०८१

भारत विद्या प्रयोजना

"भारतीय संस्कृति, सभ्यता, कला चिंतन परंपरा और वर्तमान संदर्भ"

श्री रवीन्द्र शर्मा (गुरुजी)

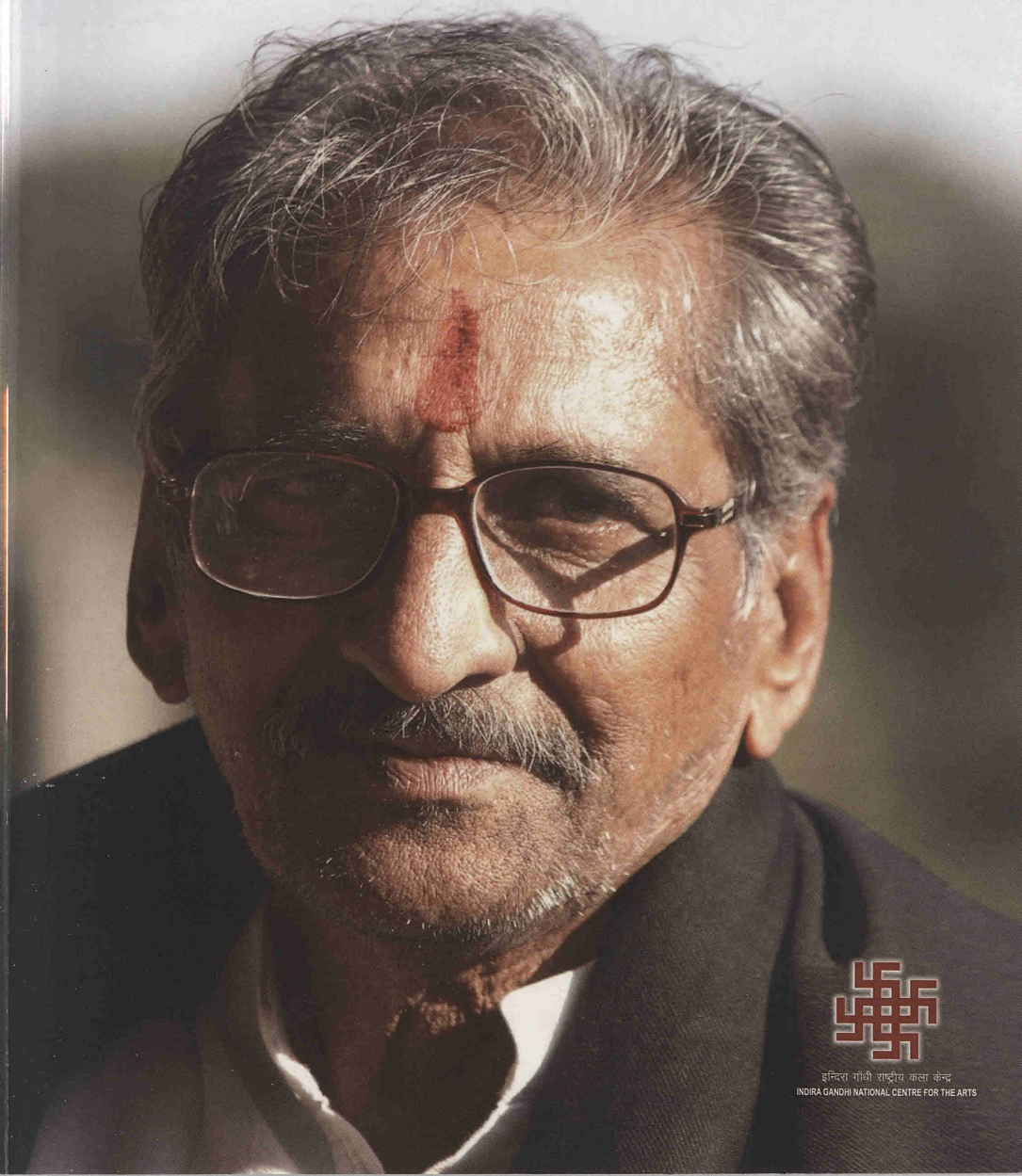

इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र
INDIRA GANDHI NATIONAL CENTRE FOR THE ARTS

भारत विद्या प्रयोजना

"भारतीय संस्कृति, सभ्यता, कला चिंतन परंपरा और वर्तमान संदर्भ"

श्री रवीन्द्र शर्मा (गुरुजी)

इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र
INDIRA GANDHI NATIONAL CENTRE FOR THE ARTS

© सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

भारत विद्या प्रयोजना

भारतीय संस्कृति, सभ्यता, कला चिन्तन परम्परा और वर्तमान सन्दर्भ

श्री रवीन्द्र शर्मा 'गुरुजी'

ISBN: 978-93-80935-71-3

संरक्षक – श्री राम बहादुर राय, अध्यक्ष इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र
प्रधान सम्पादक – डॉ. सच्चिदानन्द जोशी, सदस्य सचिव
सम्पादन – डॉ. सुधीर लाल, प्रयोजना निदेशक
वर्ष – 2018

प्रकाशक:
सदस्य सचिव
इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र,
11, मानसिंह रोड, नई दिल्ली – 110001

फोटो आभार : इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र फोटोग्राफी एकक एवं अन्य

विवरणिका

- सही समझ के मंत्रदाता – 'गुरुजी'
- गुरुजी : मर्मज्ञ व्याख्याता
- सम्पादकीय
- श्री रवीन्द्र शर्मा (गुरुजी)
- वक्तव्य का आलेख
- प्रश्नोत्तर सत्र
- जीवन – वृत्त
- Tributes (compiled from facebook)

सही समझ के मंत्रदाता- 'गुरुजी'

रवींद्र शर्मा 'गुरुजी' में कलात्मक आकर्षण अपार था। जो भी उनके संपर्क में आया उसने अनुभव किया कि उसकी समझ सुधरी। इसे दो अवसरों पर देखा और जाना। उन्हें देखने, सुनने और समझने के बहुत अवसर आए। लेकिन जिन दो बातों का उल्लेख यहाँ कर रहा हूँ, उनमें गुरुजी की छाप अमिट है। पहली घटना को कई साल हो गए। श्री गुरू गोविंद सिंह ट्राई सेण्टेनरी यूनिवर्सिटी ने दूसरे स्ववित्तपोषित विश्वविद्यालयों से भिन्न और एक बेहतर रिवाज बनाया है। दूसरे विश्वविद्यालय किसी औद्योगिक घराने के व्यक्ति को डि.लिट्. की मानद उपाधि अपने दीक्षांत समारोह में देते हैं। हमारा विश्वविद्यालय शिक्षा, संस्कृति, कला, समाज सेवा आदि– क्षेत्रों के किसी दो व्यक्ति को हर साल डि.लिट्. की उपाधि देता है। एक साल हमने के. एन. गोविंदाचार्य और रवींद्र शर्मा 'गुरुजी' को चुना। दोनों अपने क्षेत्र के महारथी! समस्या थी कि गुरुजी क्या हाँ करेंगे? यह समस्या इसलिए थी कि ऐसे आयोजनों से दूर रहने का उनका स्वभाव था। हमारे आग्रह को उन्होंने जिस सहजता से स्वीकार किया उससे ही उनकी कलाधर्मिता को हम अनुभव कर सके। पूरी गरिमा से सम्मान ग्रहण किया। कोई दिखावा नहीं। हर तरह से सहज बने रहे। लेकिन उन्हें जानने और मानने वालों ने उसे एक राष्ट्रीय उत्सव बना दिया। गुरुजी उसके कर्ता नहीं, साक्षी बने रहे। यह भाव बोध उन्हें असाधारण बनाता था।

दूसरी घटना का संबंध इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र से है। हमारे निमंत्रण पर वे 'भारत विद्या प्रयोजना' में आए। आ तो गए, पर आश्वस्त नहीं थे। यह हम बाद में जान सके। हजारों साल जो दिल्ली नाम बदल–बदलकर इतिहास की करवटों में राजधानी बनी रही, उसके आज के निवासी क्या भारत विद्या के प्रवाह से कहीं दूर तो नहीं चले गए होंगे। यह आशंका उनके मन में थी, जिसे उन्होंने व्यक्त नहीं किया। व्यक्त कर देते तो कला निर्गुण कविता हो जाती। वे भांपने और आजमाने के लिए सन्नद्ध होकर मंच पर पहुँचे। अद्‌भुत दृश्य था। एक साधारण सा दिखने वाला व्यक्ति क्या बोलेगा? इस जिज्ञासा और ऐसे अनेक प्रश्नों में सभा का हर व्यक्ति ऊबचूब हो रहा था। वहाँ जो दिख रहा था वह स्थूल ज्यादा था। सूक्ष्म अदृश्य था। विचार और भाव सूक्ष्म ही होता है। वह वहाँ हवा में तैर रहा था। किसी संत की उपस्थिति मात्र से वातावरण, परिवेश और पर्यावरण कैसे बदल जाता है, यह उस दिन हर किसी ने अनुभव किया होगा। सुनते रहे हैं कि हवा का रूख भी किसी सज्जन की उपस्थिति से अनुकूल हो जाता है। उस अनुकूलता से विद्या की मंदाकिनी बहने लगती है। उससे समीर की सुंगध फैलती है। वह रम्य होती है। स्वास्थ्यकर होती है। आनंद की अनुभूति देती है। ऐसी ही मन

की तरंग में काफी देर तक उपस्थित लोगों ने गुरुजी को उस दिन सुना। लोग सचमुच मंत्र मुग्ध थे। कितना समय गुजर गया है इसका किसी को अंदाज नहीं था। और सुनने को आतुर थे श्रोता। मंच पर बैठा वक्ता और सभा में उपस्थित श्रोता के तार–तरंग–भाव–समझ जब एक ही धरातल पर आ मिलते हैं तो वह सभा सामूहिक साधना का रूप ले लेती है। उस दिन यही हुआ। वह समयातीत सभा थी। अचानक गुरुजी ने बोलना बंद कर दिया। उससे कोई मर्माहत नहीं हुआ। उल्टे उनकी हर बात हर व्यक्ति के मन में हमेशा के लिए अंकित और टंकित हो गई। क्या आपने ऐसी सभा का कभी आनंद उठाया है? ऐसा अनुभव होता बहुत विरल है, जो उस दिन हर किसी को हुआ।

आप पूछेंगे, गुरुजी ने कहा क्या? उसे उनके भाषण की पुस्तिका में आप पढ़ लेंगे। उससे बड़ी बात जो है वह यह है कि उन्होंने देश की राजधानी के मर्मस्थल पर अपना वरद हाथ रखा। ऐसा जब होता है तो सदियों पुरानी मूर्च्छा टूटती है। भारत के इतिहास में ऐसे क्षण बार–बार आए हैं। व्यक्ति की मूर्च्छा गुरू से टूटती है। समाज की मूर्च्छा टूटती है सुधारक से। जब–जब ऐसा होता है तो व्यक्ति जहाँ अपने में लौटता है और स्वयं को पहचान पाता है वहीं समाज अपनी मूल परंपरा से जुड़ जाता है। भले ही इतिहास के पहाड़, उसके झरने, मैदान के भू–भाग उस परंपरा को प्रभावित करते हैं फिर भी वह प्रवाह बना रहता है जो उद्‌गम से निकलता है। और महासागर तक पहुंचता है। इस अनुभूति से अज्ञान का गहन अंधकार भी छँट जाता है। उगता है नवोन्मेष का सूरज। उससे दिखता है वह मार्ग जो मुक्ति देता है। उस दिन वही मार्ग गुरुजी ने दिखाया। उन्होंने यह दावा नहीं किया कि वे जो बता रहे हैं वह एकमेव मार्ग है। यही तो भारत विद्या है। जिसमें मार्ग अनेक और अनंत हैं। भारत विद्या का संदेश सीधा है–अपना मार्ग पहचानो। उसे खोजो और उस पर चलो। समाज के बनने की स्वभावगत, परंपरागत और परिवेशगत विधि ही सूत्र में भारत विद्या है। गीता में यही ज्ञान है। जो किसी और जैसा होने से व्यक्ति और समाज को विरत करता है। प्रेरित करता है कि स्वयं को अभिव्यक्त करना ही स्वधर्म है। यही जब व्यक्ति, समाज, संस्कृति और राज–काज में होने लगे तो किसी देश की सीमा में वह राष्ट्रवाद है और दुनिया के तल पर मानवता। यह ऐसा विचार है जो लौकिक होते हुए अलौकिक है। इसीलिए अमर है। उस दिन गुरुजी ने हमें शाश्वत विचार के अमरत्व से जोड़ा। शाश्वत विचार से जानना और समझना संभव हो जाता है। उससे ही व्यक्ति सुखी जीवन जी पाता है। ऐसे गुरुजी शरीर में रहें या न रहें, क्या फर्क पड़ता है।

–रामबहादुर राय
अध्यक्ष
इं. गां. रा. कला केन्द्र

"गुरुजी : मर्मज्ञ व्याख्याता"

इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र द्वारा भारत विद्या प्रयोजना के रूप में एक ऐसी दीर्घावधिक योजना का सूत्रपात किया गया है, जिसमें भारत विद्या (इण्डॉलॉजी या इण्डिक स्टडीज) पर भारतीय दृष्टिकोण से विचार–विमर्श हो।

ध्यातव्य है कि विगत काफी समय से, लगभग दो शताब्दियों से, भारत विद्या के विषय में पहले यूरोपीय और सम्प्रति अमेरिकी विद्वान बड़ी सक्रियता से कार्यरत रहे। ये सही है कि उन्होंने कई महत्वपूर्ण ग्रंथों एवं अध्ययनों का प्रणयन किया, परन्तु बहुधा ऐसा हुआ कि उनका वक्तव्य एकांगी, अपूर्ण या पूर्वाग्रहग्रस्त रहा। इसके अनेक कारण हो सकते हैं। यहां उस कारण–मीमांसा का अवकाश नहीं; पर इतना जरूर है कि भारत विद्या का सर्वांगीण और बृहत् अध्ययन भारतीय दृष्टि से, भारतीय परिप्रेक्ष्य से होना अभी बाकी है। इसी पृष्ठभूमि में इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र में भारत विद्या प्रयोजना का सूत्रपात हुआ। मुख्य ध्येय इसका यह है कि भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति को चिह्नित, अभिलक्षित एवं परिलक्षित करने वाली विशेषताओं के बारे में बात हो, विमर्श हो, प्रकाशन हो, प्रदर्शन हो। भारत की दृष्टि और भारत की सृष्टि को देखने का भारतीय संदर्भ सामने आए।

सोचा गया कि इस महत्वाकांक्षी प्रयोजना का शंखनाद किसी ऐसे महारथी से करवाया जाये जिनके रोम रोम से भारतीय संस्कृति का विराट दर्शन प्रस्फुटित होता हो। तब विचार आया कि जब अपनी सम्पूर्ण सादगी और सहजता के साथ वर्तमान परिदृश्य में एक ऐसा व्यक्तित्व श्री रवीन्द्र शर्मा "गुरुजी" के रूप में हमारे मध्य उपस्थित हैं, तो क्यों न उन्हें ही इस महत्वपूर्ण योजना के प्रारंभ के लिये अनुरोध किया जाये। कुछ निःशब्द संकोच के साथ गुरुजी ने अपनी स्वीकृति दी। पर जब उन्होंने अपना वक्तव्य प्रस्तुत किया तो समस्त भारतीय इतिहास, धर्म–दर्शन, समाज, व्यवस्थाओं और प्रौद्योगिकी को आपस में गूंथ कर, एक ऐसा चित्र हमारी आंखों के सामने जीवंत कर दिया मानो कोई फिल्म चल रही हो। हमारे यानि "भारत एवं भारतीय" के बारे में इतनी गंभीर बातें, इतनी सहजता से शायद ही कभी हमने सुनी हों। गुरुजी का वक्तव्य आगे दिया जा रहा है। आप सब सुधीजन से अनुरोध है कि इसे पढ़ें और बार–बार पढ़ें। यकीन मानिए एक बार पढ़ने से बात समझ में नहीं आएगी। इसे बार–बार

पढ़ते–पढ़ते यदि आपको कुछ ऐसी बातें हृदयंगम हो जाएं जो आज तक आपके लिए केवल प्रश्न/जिज्ञासा/मिथक थीं और यदि आत्म से आपका साक्षात्कार हो जाए तो आश्चर्य न कीजिएगा, गुरुजी का प्रताप ऐसा ही है।

आज उनके नाम के साथ ''स्वर्गीय'' या ''थे'' शब्द लगाते हुये कलम कांप रही है। वे ''हैं'' और सदा ''रहेंगे''।

डॉ. सच्चिदानंद जोशी
सदस्य सचिव
इं. गां. रा. कला केन्द्र

सम्पादकीय

श्री रवीन्द्र शर्मा 'गुरुजी' ने 5 अक्टूबर, 2016 को "भारतीय संस्कृति, सभ्यता, कला चिन्तन परम्परा और वर्तमान सन्दर्भ" विषय पर इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र की भारत विद्या प्रयोजना का "बीज" वक्तव्य प्रस्तुत किया था। व्याख्यान दो सत्रों में हुआ। प्रथम सत्र की अध्यक्षता केन्द्र के न्यासी डॉ. महेश चन्द्र शर्मा ने की और द्वितीय इण्टरएक्टिव सत्र की अध्यक्षता इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र न्यास के अध्यक्ष श्री रामबहादुर राय ने की। इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र का सभागार आतुर श्रोताओं से खचाखच भरा था। दूर दूर से लोग श्री गुरुजी के दर्शन एवं उनके विचारों से अपने को पवित्र करने आ जुटे थे। बड़े ही सहज सरल भाव से गुरुजी ने अपना वक्तव्य प्रारम्भ किया और फिर जो रस–पयस्विनी प्रवाहित हुई वो कब श्रोतागण को आप्लावित कर गई कुछ पता चला नहीं। समय रूक सा गया था। गुरुजी ने प्रथम चरण का वक्तव्य जब पूरा कर लिया, सभागार निःशब्द मौन था। संचालक (मैं) ने मंच पर आकर जब सबसे करतल–ध्वनि करने का निवेदन किया, तब लोगों की तन्द्रा भंग हुई। तालियों की गड़गड़ाहट ने बहुत सारे प्रश्नों को उठाया, जो सब श्रोताओं के अन्तर्मन में जाने कब से कुलबुला रहे होंगे। गुरुजी ने द्वितीय सत्र में अत्यन्त धैर्य, गाम्भीर्य, सहजता, एवं सरलता से कैसे बात–बात में उन सब जिज्ञासाओं का समाधान कर दिया, फिर पता नहीं चला। व्याख्यान पूरा हुआ पर शायद किसी उपस्थित का मन नहीं भरा। अध्यक्ष महोदय ने कहा कि फिर कभी गुरुजी को उनकी सुविधानुसार, ज्यादा दिन के लिए निमंत्रित कर, उनसे और ज्ञान लिया जाएगा। पर शायद विधि को कुछ और स्वीकार था। गुरू जी ने 2018 की बुद्ध पूर्णिमा के दिन अपनी जीवन यात्रा पूरी की। शायद एक और संकेत उनकी महानता का, उनके "बुद्धत्व" का।

यहाँ उसी वक्तव्य का आलेख दिया जा रहा है। इसे दैवीय योग मानें ('सम्' या 'दुर्' नहीं कहेंगे) कि भारत विद्या प्रयोजना का शुभारम्भ गुरुजी के वक्तव्य से ही हुआ और इसी प्रयोजना का प्रथम प्रकाशन उन्हीं का वही वक्तव्य है।

इस प्रकाशन के प्रेरक हैं, इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र न्यास के यशस्वी अध्यक्ष श्री राम बहादुर राय; जिन्होंने 'सही समझ के मंत्रदाता' शीर्षक से गुरुजी के बारे में अपनी बात रखी और इस प्रकाशन को एक गरिमामय सन्दर्भ प्रदान किया। डॉ. सच्चिदानन्द जोशी, सदस्य सचिव, इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र ने न सिर्फ राय साहब द्वारा प्रदत्त बीज का पल्लवन किया अपितु अत्यन्त कृपापूर्वक 'गुरुजीः मर्मज्ञ एवं व्याख्याता' शीर्षक से इस प्रकाशन में, भारत विद्या तथा इस संदर्भ में गुरुजी के वक्तव्य के महत्त्व को

रेखांकित किया। इस प्रकाशन में गुरुजी के जीवन वृत्त नामक एक सचित्र वीथि विद्यमान है जो उनकी जीवन यात्रा हमें समझाती है। वक्तव्य के बाद फेसबुक पर पोस्ट किए गए कुछ भाव– प्रणव सन्देश भी दिए गए हैं जो गुरुजी की सहजता, लोकप्रियता एवं व्याप्ति के परिचायक हैं। इसके प्रकाशन का दायित्व श्री ए. के. सिन्हा, निदेशक (प्रकाशन), इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र एवं उनकी टीम ने अत्यन्त कुशलता से वहन किया। सुश्री नव्या चतुर्वेदी एवं श्री अरूण कुमार ने इसके आलेख को तैयार करने में मदद की, एतदर्थ इन्हें आशीर्वाद। प. विद्या प्रसाद मिश्र, सुश्री ऋतु कुमारी, (राजभाषा एकक), श्री प्रवीण कुमार (सी आई एल), श्री मुन्ना लाल (कलाकोश), श्री शिवप्रसाद त्रिपाठी (एम एस कार्यालय), श्री राम कृष्ण (कलाकोश) ने इसके टंकण में सहायता की, इन सबका आभार। सुश्री श्रुति अवस्थी ने गुरुजी के चित्र एवं श्रद्धांजलि आलेख उपलब्ध करवाए, एतदर्थ इनका आभार।

हमें आशा है, यशःशेष गुरुजी का यह वक्तव्य हमारा पथ प्रदर्शक बना रहेगा और हमें अज्ञानान्धकार से ज्ञान के सनातन आलोक की ओर ले जाने में अग्रणी भूमिका निभाएगा।

डॉ. सुधीर लाल
प्रयोजना निदेशक,
भारत विद्या प्रयोजना,
इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र

दिल्ली, 21 मई, 2018
विश्व संस्कृति दिवस

श्री रवीन्द्र शर्मा (गुरुजी)

5 सितम्बर, 1952 को अदिलाबाद में जन्मे श्री रवीन्द्र शर्मा (गुरुजी) मूलतः एक पंजाबी परिवार से हैं, जो अपनी पिछली एक पीढ़ी से महाराष्ट्र की सीमा से लगे पश्चिमोत्तर आंध्रप्रदेश के अदिलाबाद शहर में आकर बस गया है। विभिन्न लोग उन्हें विभिन्न रूप–कलाकार, कारीगर, कथाकार, इतिहासविद्, शिक्षाविद्, समाज शास्त्री, निपट भारतीयता के पैरोकार, अर्थशास्त्री, दार्शनिक और न जाने कितने रूपों में जानते हैं। दसवीं तक अदिलाबाद में पढ़ाई करने के बाद, हैदराबाद के कालेज और फिर बड़ौदा के विश्वविद्यालय से कला में स्नातक और स्नाकोत्तर की डिग्री वगैरह लेने के बाद, पिछले लगभग 35–40 वर्षों से वापस अपने क्षेत्र अदिलाबाद में जाकर बस गए। वहाँ की 20 कि.मी. की परिधि में जो दुनिया उन्होंने अपनी दृष्टि से देखी, और जिसका प्रतिरूप संपूर्ण भारत वर्ष में स्पष्ट दिखाई देता है, उसी को हम सब को बताते हैं। उनकी दृष्टी का पैनापन और विविधता ही उन्हें विभिन्न विशेषणों से विभूषित कर जाती। समाज में लोगों की जीवन शैली, अर्थ–व्यवस्था, जातिगत मान्यताएँ और व्यवहार, अन्य जातियों से अंतर–संबंध, भारतीय परंपरायें, सभ्यता, संस्कृति, सौंदर्य दृष्टि, संस्कार और अन्य ढेर सारी सामाजिक व्यवस्थाएँ उनका अध्ययन विषय रहा।

उनके कार्य की गुरूता को देखते हुए, उन्हें कई संस्थाओं के अलावा आंध्रप्रदेश सरकार के कला रत्न सम्मान, प्रतिष्ठित हंस सम्मान एवं तेलंगाना सरकार के प्रथम युगादी सम्मान से भी सम्मानित किया जा चुका है। वे आई.आई.टी. हैदराबाद जैसे देश के कई प्रतिष्ठित संस्थानों में अतिथि व्याख्याता के रूप में आमन्त्रित किए जाते रहे। वे राष्ट्रीय कारीगर पंचायत के संस्थापक सदस्यों में से एक रहे। उनकी बातों को आकाशवाणी द्वारा साप्ताहिक प्रसारण के माध्यम से शिलान्तरंगालू कार्यक्रम के नाम से कई सालों तक लगातार प्रसारित किया गया है। इसके अलावा दूरदर्शन के कई कार्यक्रमों एवं देश की कई पत्र पत्रिकाओं में उनके कार्यों को प्रमुखता से प्रसारित किया गया है। उनके कृतित्व

के ऊपर कई विस्तृत लेख तो पेग्विन पब्लिकेशन द्वारा सुश्री रजनी बक्शी लिखित एक पुस्तक "बापु कुटी -Journeys in rediscovery of Gandhi" में काफी पहले ही प्रकाशित किया जा चुका था । अभी कुछ वर्ष पूर्व उनके संदेशों, वक्तव्यों की ऑडियो सीडी "भारत - गुरुजी की दृष्टि से" दो भागों में प्रकाशित हो चुकी है। इसके अलावा, उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर एक पुस्तक "स्मृति जागरण के हरकारे - श्री रवीन्द्र शर्मा (गुरुजी)" भी प्रकाशित हो चुकी है। वर्ष 2014 में उन्हें श्री गुरू गोविंद सिंह ट्राईसेन्टेनरी विश्वविद्यालय द्वारा मानद डी. लिट् की उपाधि से भी सम्मानित किया गया था। वे स्वयं कई कलाओं और सभी 18 कारीगरी विद्याओं में पारंगत थे। अदिलाबाद में उनका कला आश्रम है।

वर्ष 2018 की दिनांक 29 अप्रैल, बुद्ध पूर्णिमा को उनका देहावसान हो गया।

वक्तव्य का आलेख

डॉ. सुधीर लाल : नमस्कार! इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र न्यास के आदरणीय अध्यक्ष श्री राम बहादुर राय, हमारे सम्मानित न्यासी डॉक्टर महेश शर्मा, सम्मानित अतिथि एवं आज के सारस्वत यज्ञ के पुरोधा श्री रवीन्द्र शर्मा, सदस्य सचिव डॉ. सच्चिदानंद जोशी, संयुक्त सचिव श्रीमती वीणा जोशी इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र के परिवार के सभी सम्मानित सदस्य, देवियों एवं सज्जनों। इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र में आप सब का हार्दिक अभिनंदन। आज का कार्यक्रम इस केंद्र के परिसर में एक यादगार क्षण होगा क्योंकि आज श्री रवीन्द्र शर्मा जी के व्याख्यान के साथ ही इस केंद्र की एक दीर्घावधिक प्रयोजना भारत विद्या प्रयोजना का सूत्रपात हो रहा है। भारत विद्या प्रयोजना इस केंद्र की एक दीर्घावधिक प्रयोजना है जिस में भारत विद्या के विविध रूपों की पहचान, इनके संरक्षण–संवर्धन और इसके प्रचार के कार्यक्रम आयोजित किए जाएंगे। शोध और विद्वत् समुदाय की सक्रिय सहभागिता से प्रयोजना को आगे बढ़ाया जाएगा। साथ ही इस कार्यक्षेत्र में कार्यरत विद्वानों को अपनी बात रखने का एक मंच भी मिलेगा। आज के हमारे माननीय अतिथि हैं अदिलाबाद में जन्मे श्री रवीन्द्र शर्मा जी जिन्हें अत्यंत प्रेम एवं स्नेह से गुरुजी कहा जाता है। आप मूलतः एक पंजाबी परिवार से हैं। आप अपनी पिछली एक पीढ़ी से महाराष्ट्र की सीमा से लगे पश्चिमोत्तर आंध्र प्रदेश के अदिलाबाद शहर में आकर बस गए। विभिन्न लोग उन्हें विभिन्न रूपों कलाकार, कारीगर, इतिहासकार, शिक्षाविद्, समाजशास्त्री, निपट भारतीयता के पैरोकार, अर्थशास्त्री, दार्शनिक और ना जाने कितने रूपों में जानते हैं। दसवीं कक्षा तक अदिलाबाद में पढ़ाई करने के बाद हैदराबाद के कॉलेज और फिर बड़ौदा के विश्वविद्यालय से कला में स्नातक और स्नातकोत्तर डिग्री लेने के बाद पिछले 20–25 वर्षों से आप अपने क्षेत्र अदिलाबाद में ही आकर बस गए। यहां की 20 किलोमीटर की परिधि में जो दुनिया उन्होंने अपनी दृष्टि से देखी और जिस का प्रतिरूप पूर्ण भारत में स्पष्टता दिखाई पड़ता है, ये हमें सब बताते हैं। समाज में लोगों की जीवनशैली, अर्थव्यवस्था, जातिगत मान्यताएं और व्यवहार, अन्य जातियों से अंतर्संबंध, भारतीय परंपराएं, सभ्यता, संस्कृति, सौंदर्य–दृष्टि, संस्कार और अन्य ढेर सारी सामाजिक व्यवस्थाएं इनके अध्ययन का विषय रहा है । इनके कार्य के गुरूत्व को देखते हुए कई संस्थाओं के अलावा आंध्र प्रदेश सरकार के कला रत्न सम्मान एवं प्रतिष्ठित हंस सम्मान द्वारा भी सम्मानित किया जा चुका है। ये वर्तमान में आईआईटी दिल्ली, मुंबई आदि एनआईएफटी, एनआईटी और आईआईटी हैदराबाद जैसे देश के प्रतिष्ठित संस्थानों में

अतिथि व्याख्याता के रूप में जाते रहते हैं। आप राष्ट्रीय कारीगर पंचायत के संस्थापक सदस्यों में से एक एवं वर्तमान में उसके मुखिया भी हैं। इनकी बातों को आकाशवाणी द्वारा साप्ताहिक प्रसारण के माध्यम से शीलान्तरंगालू कार्यक्रम नाम से कई सालों से लगातार प्रसारित किया जा रहा है। अभी कुछ समय पहले उनके वक्तव्य संदेशों की ऑडियो सीडी भारत गुरुजी की दृष्टि शीर्षक से दो भागों में प्रकाशित हो चुकी है। अदिलाबाद में उनका कला आश्रम है। आपके आज के उद्‌बोधन का शीर्षक है – भारतीय संस्कृति, सभ्यता, कला चिंतन परंपरा और वर्तमान संदर्भ। हमें विश्वास है कि इसमें भारतीय संस्कृति के चिरंतन स्तंभों सत्यम् शिवम् सुंदरम् का साक्षात्कार हम सबको होगा। इस सत्र की अध्यक्षता कर रहे हैं हमारे माननीय न्यासी पद्मश्री डॉ महेश शर्मा जो खादी ग्रामोद्योग कमीशन के भूतपूर्व चेयरमैन हैं। संप्रति आप उत्तर प्रदेश के ग्रामोदय शिवालय मिशन के चेयरमैन भी है। आप दीनदयाल समिति दिल्ली के ग्राम संकुल योजना के समन्वायक भी हैं। आप गांधी जी के ग्राम स्वराज्य एवं पंडित दीनदयाल जी के इंटीग्रल ह्यूमनिज्म़ के प्रबल समर्थक एवं अनुयायी हैं। 1982 में आपने इंटीग्रल सस्टेनेबल डेवलपमेंट के लिए प्राकृतिक संसाधनों के वैज्ञानिक प्रबंधनों के प्रयोग के रूप में विकास भारती विष्णुपुर की स्थापना की। कारीगरों के उत्कर्ष के लिए आपने कारीगर पंचायत की स्थापना की जो आगे चलकर कारीगरों के लिए एक राष्ट्रीय मंच बना। 1982 में आपने ग्रामोदय ट्रस्ट लॉन्च किया। आप की विलक्षण प्रतिभा एवं भावना को राष्ट्रीय स्तर पर सराहना मिली। आपके नेतृत्व में खादी का ग्रामोद्योग 2003 में नम्बर एक एफएमसीजी नेटवर्क बन गया। आप आरबीआई, नाबार्ड, सिडबी आदि मूर्धन्य संस्थाओं के कार्यकारिणी एवं परामर्श मंडलों में रहे हैं। आपने सर्वदा ग्रामीण विकास के कार्यों में महती भूमिका निभाई है। आपका दृढ़ विश्वास है कि अन्त्योदय सर्वोदय एवं अभ्युदय की कुंजी ग्रामोदय ही है। अब मैं अपने सदस्य सचिव डॉक्टर सच्चिदानंद जोशी से आग्रह करता हूँ कि वे अतिथि एवं अध्यक्ष महोदय का स्वागत करें। डॉ. जोशी अत्यंत ऊर्जस्वी व्यक्ति हैं तथा इन्हें देश के सर्वाधिक कम आयु वाले कुलपतियों में अन्यतम होने का गौरव प्राप्त है। एक कुशल प्रशासक होने के साथ–साथ आप एक विख्यात स्कॉलर भी हैं। आपने हिंदी एवं मराठी में कई नाटकों का प्रणयन भी किया है।

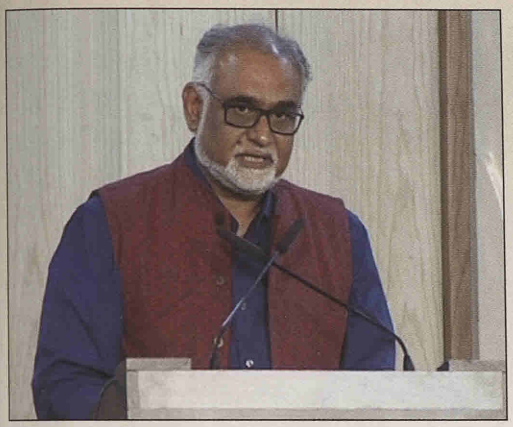

डॉ. सच्चिदानन्द जोशी : मंचासीन परम श्रद्धेय गुरुजी, इस सत्र की अध्यक्षता कर रहे श्रद्धेय डॉ. महेश शर्मा जी इंदिरा गांधी कला न्यास के माननीय अध्यक्ष श्री राम बहादुर राय जी, इस सभागार में उपस्थित सभी विद्वान् माननीय देवियों और सज्जनों। इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र की यह एक महत्वपूर्ण योजना है भारत विद्या प्रयोजना, जिसका हम आज शुभारंभ आपकी सारस्वत उपस्थिति में करने जा रहे हैं। इस प्रयोजना का मूल उद्देश्य है भारत की विद्या को भारत के संदर्भ में, भारतीय विद्वानों के दृष्टिकोण से देखने का प्रयास किया जाए। अभी तक जहां भी इण्डोलॉजी की जो अवधारणा रही वह मूलतः यूरोपियन, फिर ब्रिटिश और बाद में अमेरिकी बनी रही। इन्हीं प्रभावों ने इस विषय को प्रभावित किया। परन्तु, भारत को भारतीय संदर्भ में, भारतीय दृष्टि से, भारत के चश्मे से देखने की शुरुआत कब होगी ये प्रश्न बार–बार हमारे मन में आता रहा है। हम सभी भारतीयों को उसकी चिंता भी होती रही है। वस्तुतः भारत है क्या, भारत की दृष्टि क्या है, भारत की सृष्टि क्या है, इन तीनों प्रश्नों को हम सभी को कहीं ना कहीं सोचते रहना होगा और मथना होगा। जब तक हम इन प्रश्नों को सोचेंगे नहीं, मथेंगे नहीं, जब तक उसका अपने आप में चिंतन नहीं करेंगे, तब तक हम उस राष्ट्र गौरव की भी अवधारणा नहीं कर सकते। जिस राष्ट्रगौरव के लिए हम सब यहां पर इस धरा पर अवतरित हुए हैं, इस धरा पर अपना जीवन यापन कर रहे हैं। इन्हीं सभी प्रश्नों को सोचते हुए इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र न्यास ने अपने अधिदेश को थोड़ी व्यापकता प्रदान करते हुए भारत विद्या प्रयोजना की संकल्पना की है। माननीय अध्यक्ष महोदय के निर्देश पर और माननीय अध्यक्ष महोदय की कल्पना से हम भारत विद्या प्रयोजना के अंतर्गत ऐसे युवा अध्येताओं का ऐसा समूह निर्मित करना चाहते हैं, जो भारतीय दृष्टि से, भारतीय संदर्भ को देखने–पढ़ने और समझने की कोशिश करेंगे और भविष्य में इस संदर्भ में साहित्य की भी निर्मिति करेंगे जो युवाओं के लिए पाथेय होगी, जो युवाओं को दिशा, दृष्टि प्रदान कर सकेगी। यह हमारा सौभाग्य है कि ऐसे ही युवाओं को गढ़ने वाले, ऐसे ही युवाओं के शिल्पी, ऐसे ही युवाओं की चिंता करने वाले और सिर्फ ऊपरी सतही तौर पर चिंता करने वाले नहीं, धरातल पर रहकर चिंतन करने वाले ऐसे एक

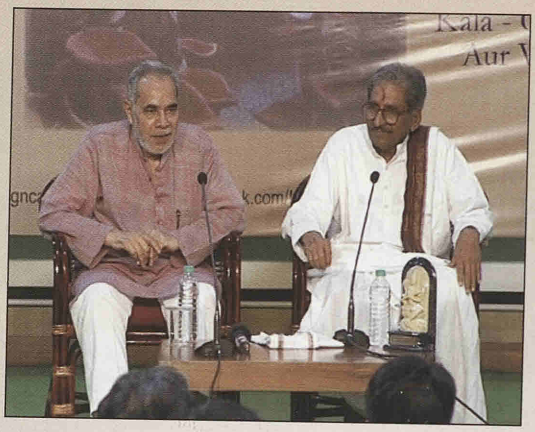

शिल्पी, ऐसे एक कलाकार, ऐसे एक रचनाकार, ऐसे एक कारीगर जो सही मायने में एक कलाकार, एक कारीगर हैं, श्रद्धेय गुरू जी हमारे बीच इस प्रयोजना का शुभारंभ करने के लिए उपस्थित हैं। यह हमारा सौभाग्य है कि हम उन के मार्गदर्शन में आज भारत विद्या प्रयोजना का शुभारंभ कर रहे हैं। भारतीय संस्कृति के संबंध में, भारतीय कलाओं के संदर्भ में, भारतीय रचनाओं के संदर्भ में, आपका जो व्यापक दृष्टिकोण है, आपका चिंतन है, अपने आप में बहुत अनूठा है, बहुत अलग है। हम सब जब उनके भाषण का आनंद लेंगे तब हम सबको अनुभव होगा किस जमीनी धरातल पर रहकर यह व्यक्ति कितनी ऊंचाई तक, कितनी गहराई तक सोच सकते हैं। हमारे माननीय अध्यक्ष जी इसी किस्म के एक और व्यक्ति हैं जिन्होंने इन तमाम बातों को सोचा है, समझा है और किया है। आज आप सबकी विद्वत् उपस्थिति हम सब लोगों के लिए उत्साहदायी है, प्रेरणादायी है, निस्संदेह युवाओं के लिए अधिक प्रेरणादायी है क्योंकि भविष्य में भारत की विद्याओं को समझना, भारत की संकल्पना को समझना, भारत की संकल्पना को आगे बढ़ाना आप सभी युवाओं के हाथों में है। आप सभी का हृदय से स्वागत है, हार्दिक अभिनंदन है।

पवन जी : नमस्कार! मैं थोड़ी अपनी बात करूंगा। हम लोग कुछ एक छोटी सी जगह में शिक्षा का प्रयोग करते रहे हैं पिछले 27–28 साल से और उस काम को करते–करते कई कठिनाइयां आईं। उन कठिनाइयों में यह था कि हम जिस समाज को पढ़ा–लिखा रहे थे, यह सोच रहे थे कि पढ़ा–लिखा रहे हैं, उनके माता–पिता या दादा–दादी या नाना–नानी ने हमसे शिकायत करना चालू कर दी कि आप पढ़ा–लिखा कर हमारे बच्चों को बर्बाद कर रहे हैं। और यह बात जब हमको समझ आई तो हम एक बहुत ही असमंजस की स्थिति में पहुंच गये कि करें क्या पढ़ाना छोड़ दें? इनकी बात मान कर और नहीं तो कैसी पढ़ाई करें ? इस यात्रा में मेरी सबसे पहले भेंट हुई गुरू तुल्य श्री धर्मपाल जी से। काफी इत्तेफाक से मिलना हुआ उनसे और उनसे जब मिले हमारी बहुत सारी मान्यताएं टूटी। धर्मपाल जी ने हमें गांधी जी को पढ़ने को प्रेरित किया और गांधीजी को पढ़ने से कुछ गुत्थियां सुलझी यह समझ आया कि घर और पाठशाला में

फासला बढ़ा है। हमारे देश में पिछले दो सौ ढाई सौ सालों से यह समस्या है जो नाना–नानी, दादा–दादी हमसे कह रहे हैं कि स्कूल ने हमारे बच्चों को बर्बाद कर दिया। गांधी जी को पढ़ करके धर्मपाल जी को पढ़ कर के और उनके साथ रहकर बहुत सारी बातें समझ में आई। एक तरह का पैराडाइम शिफ्ट का मौका था हम लोगों के लिए। हमारी दृष्टि बदली। लेकिन सच कहूं गांधी जी से और धर्मपाल जी से दृष्टि तो मिली लेकिन एक कमी फिर यह रह गई कि वह क्या था भारत में जो भारत को इस तरह का बनाता था। गांधीजी इशारा करते हैं "हिंद स्वराज में कि हमने हजारों सालों से उसी गांव में रहना उचित समझा, उसी हल को चलाना उचित समझा, उसी झोपड़ी में रहना उचित समझा और यह निर्णय हमारा सोचा–समझा निर्णय था कि हम दूसरी दिशा में नहीं जाना चाह रहे हैं। बड़ी मशीनों की दिशा में, नगरों की दिशा में बड़ी टेक्नोलॉजी की दिशा में"– इतना कह कर के वह इस बात को बहुत ज्यादा विस्तार नहीं देते हैं। इस प्रकार से धर्मपाल जी को पढ़कर यह तो पता लगा कि हमारे यहां कितनी अच्छी शिक्षा व्यवस्था थी किस प्रकार की साइंस एंड टेक्नोलॉजी थी लेकिन यह सब था कैसे इसका बहुत ज्यादा अनुमान लगता नहीं है। यह भी पता लगता है कि 1750 में हिंदुस्तान पूरी दुनिया का एक चौथाई; कुछ लोग एक चौथाई बोलते हैं कुछ लोग 24%, कुछ लोग 33 परसेंट बोलते हैं। इतना बड़ा उत्पादन गैर कृषि का उत्पादन हिंदुस्तान करता रहा है 1750 तक। चीन में 40–45 परसेंट का उत्पादन होता रहा है और शेष दुनिया में सिर्फ 25 परसेंट का उत्पादन। तो इतना बड़ा हिस्सा हमारा उत्पादन में कैसे होता था यह बात समझ में नहीं आती। जब गुरू जी से मिले और उसका भी श्रेय में धर्मपाल जी को देता हूं क्योंकि वे हमें किस्सा सुनाते रहते थे कि मैं अदिलाबाद गया था। अदिलाबाद में एक रवीन्द्र शर्मा नाम के व्यक्ति से मिला था और उनके यहां कुछ आदिवासी आए हुए थे और अपना जाति पुराण बता रहे थे पटकथा के द्वारा और उस पटकथा को बताते हुए यह बताते हैं कि हमारे पूर्वज जो हैं वे तो महाभारत काल से हैं, हम तो नहुष की संतान हैं और धर्मपाल जी को यह बात बहुत उत्साहित करती थी कि हमारे यहाँ की हर जाति अगर अपना पुराना इतिहास बताएगी तो इसी तरह से बताएगी हम

तो किसी राजा या किसी बड़े आदमी के वंशज हैं। हम कोई मामूली लोग नहीं हैं और यह जो आत्म–छवि होती है यह बड़ी चीज होती है। आप कुछ भी कर लें यदि आप में वह आत्म–छवि नहीं है तो आपमें कभी आत्मविश्वास या आत्मसम्मान नहीं आता है। और आत्मविश्वास और आत्मसम्मान हो तो आदमी बहुत कुछ कर लेता है। तो यह बात धर्मपाल जी ने उस समय बताई थी और फिर गुरू जी से मिलना हुआ तब पहली बार यह स्पष्ट हुआ कि हम व्यवस्था व्यवस्था करते रहते हैं, व्यवस्था की बहुत आलोचना भी हम लोग करते रहे हैं व्यवस्था को कुछ हद तक हम समझते भी हैं लेकिन गुरुजी से मिलने के बाद पहली बार यह समझ आया कि व्यवस्था और डिजाइन इन में कोई भेद नहीं रहता। डिजाइन इस कमरे की डिजाइन हो, मेरे कपड़ों के डिजाइन हो, आप के कपड़ों के डिजाइन हो, टेक्नोलॉजी के डिजाइन हों और इनकी व्यवस्था, दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू एक तो, दिखाई देने लगते हैं कि यह दोनों ही हमारे व्यवहार को प्रभावित करते हैं और एक बहुत सूक्ष्म तरीके से प्रभावित करता है और दूसरा जरा शायद स्थूल तरीके से प्रभावित करता है। इतना ही फर्क है। तो यह गुरू जी से मिलकर हमने व्यवस्थाओं को समझा बहुत अच्छी तरीके से समझा और फिर यह बात समझ आई कि धर्मपाल और महात्मा गांधी जिस बात की ओर इशारा कर रहे हैं या जिस की झलक मिलती है कम या ज्यादा उस बात को प्रत्यक्ष रूप से जब गुरू जी से मिले 7–8 दिन बिताए तो वह प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देने लगा कि वे व्यवस्थाएं क्या थीं या ये जो व्यवस्थाएं थीं जाति की व्यवस्था हो या ग्राम की व्यवस्था हो किसी भी प्रकार की व्यवस्थाएं हों; वे अलग–थलग नहीं थी उनमें एक बहुत अच्छा एलाइनमेंट, एक तालमेल रहता था। तो मैं अब आपके और गुरुजी के बीच नहीं आता हूं इतनी ही बात बोल कर अपनी बात को समाप्त करता हूं। और अब गुरुजी अपनी बात रखेंगे धन्यवाद।

श्री गुरू जी : धन्यवाद। नमस्कार! परिचय तो मेरा दे दिए हैं सब लोग। मैं अभी जो तेलंगाना बना है, तेलंगाना में एक छोटी सी जगह है अदिलाबदा, वहाँ मेरा जन्म हुआ, वही सारा बचपन बीता। हमारा इलाका काला पानी माना जाता था। सजा के तौर पे वहाँ लोगों को भेजा जाता था, ऐसा सुनने में आता है। पर जगह सुन्दर है, छोटी सी जगह है। मैं वहीं पैदा हुआ और वहीं घूमता रहा। छोटी सी जगह में साइकिल ही हमारा वाहन होता था। हम जब निकलते थे तो इक्का–दुक्का लोग साथ होते थे, हम कुछ देखने के लिए बाहर नहीं निकलते थे – कुछ भी देखने के लिए निकलते थे। जब कुछ भी देखने के लिए निकलते हैं तो बहुत कुछ दिखाई देता है। कुछ देखने के लिए निकलेंगे और वो नहीं दिखाई दिया तो निराश हो जायेंगे। हमको तो निराश होने का प्रश्न ही नहीं उठता है, कुछ भी देखने निकले हैं तो बहुत कुछ दिखाई देता था। और जो भी दिखाई देता उसकी जानकारी लेते रहते थे, ये सब क्या है क्या नहीं है। लग रहा था ये सब जरूरी है, सब जानकारी ले लें क्यूंकि, अभी वो परिवर्तन का काल वहाँ पर चालू हो चूका था धीरे धीरे। वैसे अदिलाबाद में तो 1980 के बाद से परिवर्तन बड़ी तेजी से चालू हुआ। उसके पहले तो वहाँ की अपनी व्यवस्थाएँ सब कुछ चलती रहती थीं। जो कुछ हम बचपन में देखें हैं अगर वही सब देखे कैसे होता था, क्या होता था, फिर जरा देखने का एक जरा महत्त्व अलग हो गया, फिर क्यों देखने वाली बात आई, पहले देखने का एक शौक था फिर क्यूँ देखना है। पुराणों में एक कहानी पढ़ लिए थे हम लोग पुराणों में एक कहानी आती है कि प्रलय आने वाली है। ऋषियों को पता लगा प्रलय आ रही है, ऋषि लोग बहुत जल्दी जल्दी सब चीजों का बीज इकट्ठा कर के एक नाव में चढ़ गए। और जब प्रलय आया तो सारी धरती डूब गयी और नाव बह गयी। उसके बाद जब धरती बाहर निकली। प्रलय शांत होने के बाद, तो वो ऋषि लोग उन्हीं बीजों से एक सृष्टि किये तो ठीक ऐसे हम लोगों को उस समय लगा, आज से 35–40 साल पहले कि अब एक प्रलय आ रहा है। उस प्रलय में यहाँ का सब कुछ खत्म हो जायेगा; भारतीय संस्कृति, भारतीय सभ्यता, भारतीय व्यवस्थायें, भारतीय विद्याएँ; सब कुछ खत्म हो जाएगा तो हम लोग भी जल्दी जल्दी दौड़ कर सब चीजों का बीज इकट्ठा कर लें। अब बीज भी क्या था उस समय वहाँ पर कि उस छोटे से इलाके में सब कैसे बन जाता था वो सारी चीजें देख लें कि लोहे से लेके कागज, कागज से काजल तक लोग कैसे बना लेते थे वो सारी विद्याएँ क्या थीं; वो हम लोग देखने लगे। हमारे इलाके में लोहा बहुत बनता था पहले तो वो हम लोग देखने लगे कि कैसे बनता थी। ये जितना जल्दी हो सके उतना जल्दी कुछ ना कुछ कर के इसको रख लिया जाए, बाद में तो खत्म होना ही है क्यूंकि अब जो प्रलय आया है इसको कुछ भी नाम दे सकते हैं पाश्चात्य विज्ञान या कुछ और व्यवस्था

भी दे सकते हैं; मगर उस प्रलय में ये बचेगा नहीं तो हम लोग काफी चीजों का फिर अध्ययन करना चालू कर दिए। जल्दी जल्दी सारी चीजों का। वो लोग सब तैयार कर लेते थे किसी और पर तो आश्रित नहीं थे। काफी सुंदर सुंदर गाँव थे। गाँव में बहुत तरीके की कलाएं चलतीं थीं। जैसे गाँव उस समय हम देखते थे उस समय गाँव के उपर एक रौनक नजर आती थी, आज वही गाँव देखते हैं तो एक उदास–उजाड़ नजर आते हैं, अब रौनक नजर नहीं आती है। उस समय एक रौनक सी नजर आती थी, तेलुगु में उसको कला कहते हैं; एक कला नजर आती थी, एक रौनक नजर आती थी। उस समय ये सारी चीजे देखने में आई साथ फिर उसकी समझ भी बनाने लगे कि क्यूँ, ऐसा क्या है, बुजुर्ग लोगों से बात करना, बात करते करते ये बहुत सारी चीजें सारी जानकारी ली है: ये कैसे सब होता है, क्यूँ होता था, क्यूँ कर लेते थे। तो गाँव की व्यवस्थायें क्यूंकि उस समय तो बहुत बड़े बड़े शहर तो थे नहीं । निजाम के काल में शायद हैदराबाद की आबादी 1 लाख से ज्यादा नहीं थी, उतनी ही आबादी थी। तो शहर तो बड़े नहीं थे मगर आबादी अच्छी थी गाँव की और गाँव में काफी कुछ चलता रहता था । गाँव और शहरों में फर्क नहीं था उस समय पर कोई अंतर नहीं था; जितना हैदराबाद में था उतना एक छोटे से गाँव में भी होता था, सब कुछ हो जाता था उतना ही, तो ये सब कैसे कि कैसे फिर ना कैसे रचनायें थी गाँव फिर कैसे बनने लगे, गाँव क्यूँ बनाये लोग। तो हमारे पास में हजारों सालों से गाँव बनते रहे हैं, गाँव की ही व्यवस्था ही रही है शहरों की व्यवस्था नहीं रही है। इंद्र का एक नाम है पुरंदर। जब जब भी कभी कभी बड़े बड़े शहरों की व्यवस्थाएं बनीं तो उसको नाश करने वाला वो माना जाता है पुरंदर। हुई हैं बहुत बार बड़े बड़े शहरों की भी व्यवस्थाएं हुई है फिर कालांतर में उसको खत्म भी होना पड़ा है। इंद्र का तो मतलब होता है एक व्यवस्था। कभी एक व्यवस्था उसको बढ़ाती है कभी एक व्यवस्था उसको खत्म भी करती है। ये होता रहता है। तो हमारे पास में गाँव की व्यवस्था को हजारों सालों से बहुत बड़ा महत्त्व दिया गया है कि गाँव, गाँव की कल्पना। लोग किससे लिये, प्रेरणा कहीं ना कहीं से तो होना है ना क्यों बड़े–बडे शहर या और तरह की व्यवस्था नहीं, तो लोग गाँव की व्यवस्था प्रकृति से प्ररेणा लेके गाँव की एक व्यवस्था खड़ी कर लिये थे। प्रकृति में जैसे भोजन ढूँढने के लिये चींटी कितनी दूर जाती है – ज्यादा से ज्यादा 4–5 गज, पशु 4–5 किलोमीटर चला जाएगा इससे ज्यादा दूर तो नहीं जाएगा; पंछी शाम में वो कहीं से अपने घोंसले में लौट आता है, उससे दूर तो जाएगा नहीं। जब परमात्मा सब जीवों को पैदा किया है और हर जीव के लिये आहार भी पैदा किया है, आहार के लिये उसकी एक परिधि भी बना दिया, कि इस परिधि में उसे बारहों महीने आहार मिल जाएगा

और वो मिलता भी है। आज भी सारे जीवों को मिलता भी है, तो मनुष्य को नहीं मिल सकता है क्या? मनुष्य क्यों अपनी परिधि छोड़े? समझ के लोग ये सोचे कि मनुष्य को भी मिल जाएगा, उतनी ही परिधि हमारे लिये ठीक है, सुबह में वो निकले और शाम में घर आ जाए चलकर। उस परिधि को वो अपनी दुनिया बना ले कि बस इतनी परिधि हमारे लिये ठीक है। जीने के लिये गाँव ठीक है पर ज्ञान के लिये दुनिया को अपना गाँव बना लिये है। ज्ञान के लिये दुनिया है पर जीने के लिये गाँव हमारी दुनिया है। उससे बाहर हम जाएगें नहीं क्योंकि अपनी परिधि से बाहर जाना मतलब दूसरे के भोजन पर कब्जा करना या फिर किसी की गुलामी करना। क्यों करना है? ना तो किसी के भोजन पर कब्जा करेंगे ना किसी की गुलामी करेंगे, अपनी परिधि में आसानी से जी सकते हैं तो जियेंगे, जी लेंगे क्या है। तो उस हिसाब से वो एक छोटी सी व्यवस्था कायम कर लिये तो उसी में सबकुछ है ना। उनका ये था गाँव को अपनी दुनिया बनाना है। उनकी ये सोच थी कि जितनी चीजें दुनिया में बनती है उतनी हम अपने इलाके में क्यों नही बना सकते है, आसानी से बना लेंगे, वहाँ बनाने वाले भी आदमी है, हम भी आदमी है। इसलिये हर चीज जो वो अपने पास तैयार करने की कोशिश किये है, गजब की कोशिश है तो एक गाँव की जो कल्पना है जो सोचे हैं वो लोग कि गाँव में क्या–क्या जरूरी है। गाँव में चार चीजें महत्त्वपूर्ण है विज्ञान, कला, अध्यात्म और सामाजिक अर्थशास्त्र। ये चार चीजें एक गाँव में है तो वो श्रेष्ठ गाँव है। विज्ञान का, कला का और अध्यात्म का एक ही उद्देश्य होना चाहिए, तीनों का उद्देश्य है कि तीनों समाज को सामाजिक बनाते है। अगर समाज सामाजिक नहीं है तो किसी काम का नहीं है, किसी मतलब का नहीं है। उनका ये था कि एक परिधि बनाये प्रकृति को देख कर, एक जीवनशैली बनायें प्रकृति को देखकर। जैसे प्रकृति हमेशा परिपूर्ण रहती है, हम भी वैसे परिपूर्ण जी सकते हैं। पूर्ण रहकर भी वो पूर्ण है, और अपूर्ण रहकर भी वो पूर्ण है। तो उस तरह हम भी परिपूर्ण जी सकते हैं, उन्होंने उस तरह की डिजाइनिंग करने की वो कोशिश कर लिये कि पूर्ण हों। जैसे एक वृक्ष पर फूल खिलता है तो सुन्दर है वरना हम तो कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि फूल खिलता तो सुन्दर लगता। दूसरा, कोई पंछी

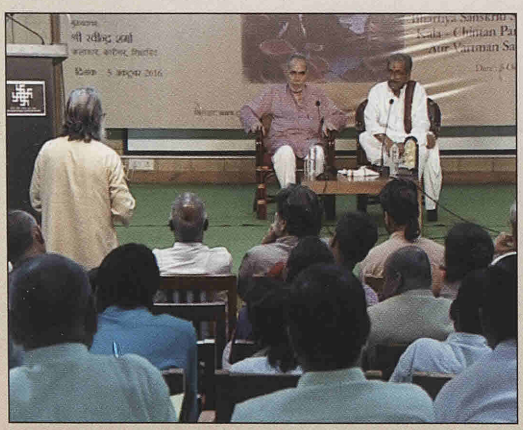

आकर बैठ गया तो सुन्दर लगता है, वरना हम तो कल्पना नहीं कर सकते। पंछी उड़ जाय तो भी सुन्दर लगता है, वृक्ष खुद में सुन्दर है, दोनों मिलते हैं तो भी सुन्दर लगता है, अलग होते है तो भी सुन्दर लगता है। कमी किसी में कुछ नहीं है। तो वो लोग प्रकृति को देखकर अपनी जीवन शैली ऐसी बना लिये कि किसी के पास की चीज ज्यादा है तो ज्यादा ना लगे और किसी के पास की चीज नहीं तो कमी महसूस ना करे, मानसिक तौर पर परेशान ना रहे। उस तरह की डिजाइनिंग तो लोग कर लिये वेशभूषा का, आहार का, घरों का सब उस तरह की रचना कर लिये वो लोग कि है तो भी ठीक है नहीं है तो भी ठीक है, परेशान नहीं होना है और अर्थव्यवस्था वो लोग अपने शरीर को देखकर बना लिये शरीर में भाँति–भाँति के अंग है, भाँति–भाँति की सारी चीजें है, उनके उपयोग भाँति–भाँति के है। पाँचों उँगली बराबर नहीं होती पर खाना खाने के वक्त पाँचों उँगली एक समान हो जाती है। भाँति–भाँति के काम, भाँति–भाँति का सबकुछ मगर भोजन सबका एक समान होगा, इस तरह की गाँव की एक अर्थव्यवस्था उन्होंने बना ली थी कि भोजन मात्र सबका समान हो उसमें ऊपर नीचे ना हो। तो उसमें गाँव के लोगों को कितनी तरीके से व्यवस्थित कर लिये। हमारे पास गाँव में हिन्दुस्तान में तीन ही वृत्ति थी चौथी कोई वृत्ति नहीं थी। एक थी कर्मवृत्ति, वैश्यवृत्ति एवं भिक्षा वृत्ति। कर्मवृत्ति में कौन लोग हैं, जड़ पदार्थ से जो लोग सृष्टि करते हैं वो कर्मवृत्ति में आते हैं, लकड़ी जड़ है, सोना जड़ है, लोहा जड़ है, चमड़ा जड़ है। जड़ पदार्थों से सृष्टि करने वाला सारा समाज कर्मवृत्ति में आता है। तो एक बहुत बड़ा समाज उस पर आधारित ही नहीं है। दूसरा रहा है वैश्यवृत्ति, वैश्यवृत्ति में कौन लोग आते हैं, जो चेतन से चेतन की वृद्धि करते हैं। चेतन से चेतन की वृद्धि करने वाले सब लोग वैश्यवृत्ति में आ जाते थे। जैसे किसान है धरती में एक बीज डालकर के हजारों बीज पैदा कर देता है, अपने हाथ से नहीं बनाता है या एक ग्वाला है, दस गाय से सौ गाय करता है या एक भेड़–बकरी चराने वाला गूजर है या धनगर है जो 100 बकरी से 1000 बकरी कर देता है, इस तरह की वृद्धि करने वाले सब लोग वैश्यवृत्ति, जिसकी बहुत उपजातियाँ थी, बहुत सारी। हजारों रहे है भिक्षावृत्ति में। कर्मवृत्ति और वैश्यवृत्ति के लोग गाँव को

समृद्ध करते हैं, और ये भिक्षावृत्ति वाला समृद्धि से निर्लिप्त रहने की बात करता था, समृद्धि को जीना है मगर उससे निर्लिप्त रहना हैं। वो निर्लिप्त रहने की बात करता था। ये अपरा की व्यवस्था करते थे और वो परा की बात करता था इसलिये दो समाज उसको अपने से काफी ऊँचा मानते थे, हालाँकि वो इसी समाज पर आधारित जीता था, उसका जीवन इसी समाज से चलता था, तो भिक्षावृत्ति में सारे कलाकार आ जाते हैं। वैद्य आ जाते हैं, ये सब लोग भिक्षावृत्ति में आ जाते हैं, ये सभी लोगों की व्यवस्था करनी पड़ती है, इनकी व्यवस्थाएं पूरी कैसे हों कर्मवृत्ति वाले गाँव में कितने लोग होने चाहिये। हमारे पास में वैसे 18 तो कारीगर होते है। गाँव में 18 तरह की कारीगरी चलती है और हर कारीगर की 12–12 उपजातियाँ हो जाती हैं। और उसके बाद उसकी कुछ उपजातियाँ हो जाती हैं। कुल मिलाकर एक गाँव में 360 जातियों का वर्णन आ जाता है, हमारे पास। एक गाँव तभी परिपूर्ण गाँव है अगर 360 जाति है। जाति क्या है, एक गाँव में बहुत विषयों के ज्ञाता चाहिएं, कोई मिट्टी के काम का ज्ञाता, कोई लोहे के काम का का ज्ञाता, फिर चमड़े के काम का ज्ञाता, फिर सोने के काम का ज्ञाता। एक एक विषय के ज्ञाता को इकट्ठा किये थे ये लोग। ये सब काम की जानकारी रखने वाले लोग हमारे पास में हो। वास्तव में वो ज्ञाता है, यहाँ गड़बड़ जरा क्या हो जाती है संस्कृत में 'ज्ञ' की जगह 'ज' बोलते है, 'यज्ञ' की जगह 'यज' पढ़ते हैं। तो ये कुछ जगहों पे ज्ञाति को जाति भी बोल दिया जाता है। तो जाति की अलग–अलग परिभाषाएँ बन गई। वास्तव में जाति हमारे पास में ऐसा है नहीं, संस्कृत में जाति किसी और चीज को बोला जाता है। ये मनुष्य जाति, ये पशु जाति, ये पक्षी जाति, ये वृक्ष जाति, ये माने जाते हैं। मगर गाँव में ज्ञाति लोग होते हैं, जब हम किसी को पूछते हैं तुम किस विषय के ज्ञाता हो तो वो बोलेगा कि मैं इस विषय का ज्ञाता हूँ, मैं तो मिट्टी के काम का ज्ञाता हूँ, तो ज्ञाति लोग होते है। इतने विषयों के ज्ञाति लोग एक गाँव में चाहिए। अगर ज्ञाता है तो बहुत कुछ है गाँव में। इतने तरह के लोगों को जो इकट्ठा गया था, तो उनकी व्यवस्था कैसे की गई थी। जब कारखाने छोटे होते हैं तो समाज उनको व्यवस्थित करते हैं, तो वो सब छोटे–छोटे कारखाने वाले लोग थे, और जब कारखाने छोटे हैं, टैकनौलोजी छोटी है तो समाज उसको व्यवस्थित कर लेता है अपने हिसाब से। और बड़े–बड़े कारखाने तो समाज को व्यवस्थित करते हैं, कि तुमको ऐसे रहना चाहिए, ऐसे खाना चाहिए, ऐसे पहनना चाहिए, और टैकनॉलाजी छोटी है, कारखाने छोटे हैं तो समाज उसको व्यवस्थित करता है कि हमारे गाँव में ये कारीगर लोग चाहिएं, इस विषय का ज्ञाता चाहिए, हम उसको घर देंगे, उसके रहने की पूरी व्यवस्था करेंगे, उसके आहार की रक्षा करेंगे और उसके बाद उसका एक मार्किट बनाएंगे। ये सारी चीजें गाँव की जिम्मेदारी होती हैं। किसको रखना है गाँव में, एक गाँव में

अगर एक भी विषय का ज्ञाता आ रहा है, तो कोई भी काम आदमी क्यों करेगा, सबसे पहले तो ये देखता है कि इस काम में मैं और मेरा परिवार आसानी से जी सकता है या नहीं, और आहार की सुरक्षा है तो वो कोई भी काम करेगा, दूसरा उस काम को लेकर के वो समाज में गौरव चाहता है, तीसरा वो कहीं न कहीं एक स्वतंत्रता का भाव भी चाहता है कि हम किसी के नीचे दबे हुए लोग नहीं है, स्वतंत्र लोग हैं। और ये तीन चीज नहीं हैं तो बहुत कठिन हो जाता है किसी को भी कहीं जीना। तो वो उस तरह से कैसे किया जाय, कैसे इनको व्यवस्थित किया गया था, अब दूसरी बात है कि किसी की बनाई हुई चीज दूसरा क्यों ले, कि जबरदस्ती है क्या। जरूरत है तो लेगा, नहीं तो सुंदर दिखाई दे तो लेगा, नहीं तो लेने का कारण नहीं है। जरूरत कितनी है किसी चीज की, कपड़ा अगर जरूरत के हिसाब से लेंगे तो कितना चाहिए। एक कम्बल को या एक चादर को बीच में छेदा कर के गले में फंसा ले और कमर में डोरी से बाँध ले तो आधी जिन्दगी आसानी से कट सकती है, इससे ज्यादा कपड़ा क्या चाहिए किसी को। बर्तन कितने चाहिए, किसी भी चीज की कितनी जरूरत है, बड़ी कम जरूरत है। मगर इतनी कम जरूरत की चीजों को इस्तेमाल करेंगे तो उनको बनाने वाला तो नहीं जिएगा, अगर जीना है तो उसे भरपूर काम चाहिए। अगर इन सब लोगों को हाथभर काम होना है तो फिर कैसी व्यवस्था हो, किस तरह इन लोगों को दिया जा सकता है काम, तो उस हिसाब में आकर जो हमारी अर्थव्यवस्था बनी थी, व्यय प्रधान अर्थव्यवस्था बनी थी। आय प्रधान नहीं। हमारे पास में तय कर दिया गया था अपनी जिन्दगी में किस परिवार को कितना, कैसे खर्च करना होगा। वो व्यय प्रधान अर्थव्यवस्था को खड़ा करके कि सारे लोग जीना है तो वहाँ की अर्थव्यवस्था व्यय प्रधान होगी। बिना जरूरत के भी इनकी चीजों को इस्तेमाल करना होगा- इस तरह की एक पद्धति बना करके वो लोग अपना जीवन जीना चालू कर दिये। अब ये लोग हैं उसके साथ–साथ कलाकार भी हैं, कलाकार अब जैसे वेद पंडितों को या फिर कलाकारों को, वैद्यों को, सारे लोग है। वैद्यों को छोड़ करके वो अपने सामर्थ्य के बल पर नहीं जी सकते। इनकी किसी को जरूरत ही नहीं होती, कलाओं की किसी को क्या जरूरत है। आज तो कहीं भी कलायें नजर नहीं आती हैं, खत्म हो गई सारी कलायें। भाषा, भवन, भेष–भूषा के आधार पर हिन्दुस्तान के 108 भाग होते थे। हर 25–50 किलोमीटर के बाद भाषा बदल जाती थी, भवन बदल जाते थे, भेष–भूषा बदल जाती थी। वो तो पता चल जाता। आज इतने लोग बैठे हैं, किसी का कुछ पता है। यहाँ पूरे हिन्दूस्तान के लोग बैंठे होंगे। किसी का कुछ पता नहीं लगता है कौन किस इलाके का है, सब एक जैसे हैं। इस भेष–भूषा में अगर एक पुतला विदेश भेज भी दें तो शायद उसको वो लोग भारतीय का पुतला भी बोलेंगे। पता नहीं है ना, क्या पहचान है

इसकी। वो तो जो इतनी भेष–भूषा, भाषा, भवन और भोजन, घरों का डिजाइन हर इलाके का अपना अपना है, वैसे कुछ 108 के आस–पास देखने में आते हैं पूरे। तो वो है इस में इतना सब कुछ कैसे था, कैसे कर लिये थे वो लोग इतना डिजाइनिंग, क्या जरूरत थी उन लोग को, और उस में ये कलाकार, ये सारे लोग, कलाकारों की क्या जरूरत थी समाज में, डिजाइन की क्या जरूरत है। पर उस समय का समाज इसकी जरूरत महसूस किये था और ये सारी विद्याओं को व्यवस्थित करने के लिए एक व्यवस्था बना दी गई थी। समाज उसकी जिम्मेदारी ले लिये था, हमारे पास में जब गाँव में पहले अनाज का बँटवारा हो जाता, अनाज बँट जाने के बाद एक हिस्सा सभी को गाँव के लिये देना पड़ता था। और वो हिस्सा महाजन के पास में रखा जाता था। तो वो खर्च होता था विकलांगों के लिए, विधवाओं के लिए, वैद्यों के लिए एवं विद्वानों के लिये, इनके लिए खर्च होता था। ऐसी विधवा जिसका कोई नहीं है, ऐसे विक्लांग जिनका कोई नहीं है, वैद्य लोगों का पोषण गाँव को करना है, विद्वान बैठे हैं, कवि रचना कर रहा है, संगीतकार है, कोई विद्वान बाहर से आ गया है, इनकी व्यवस्था गाँव को करना है। इतनी कलायें हमारे पास पनपी थीं बहुत कलायें पनपी थीं हमारे पास में, इतनी कि अब तो कल्पना से बाहर गयी है सब चीजें। हर जाति का अपना वाद्य, अपना संगीत, अपना नृत्य था, हर जाति के अपने नाट्य थे। और भिक्षावृत्ति वाली जो जातियाँ है सबके अपने–अपने नाट्य थे, हरेक का अपना–अपना वाद्य था और अपना–अपना संगीत था, अपनी उनकी नृत्य की शैली थी, ये सब। इतनी कलायें कैसे पनप गयीं। तो उस समय की जैसी गाँव की व्यवस्था में समय को तीन हिस्सों में बाँट लिये थे, एक तो है 24 घंटे हैं, 8 घंटे तो सोना है तान के, फिर 8 घंटा आहार के लिये काम करना है, फिर बचा हुए 8 घंटे हमको अपना आध्यात्मिक और सामाजिक जीवन जीना है। यही जीवन जीना है तो किस के लिये जीना है फिर। 24 घंटे खाली दौड़ लगा लगा करके खाली जीना है तो फिर क्या मतलब का है? उनको आध्यात्मिक और सामाजिक जीवन जीना है इसके लिये पूरा भरपूर समय रहना चाहिए। तो उस हिसाब से 8 घंटे से ज्यादा काम नहीं होना चाहिए।

तो कारीगर लोग जो उस समय गाँव में जो काम करते थे, वो बेचने के लिये नहीं होता था, वो तो देने के लिये होता था। काम बेचने के लिये नहीं था गाँव में देने के लिये था। जब तक कारीगर लोग काम देने के लिये किये, वो पूरा सामाजिक जीवन जीते थे। जब वो बेचने के लिये काम करने लगे, तो सामाजिक जीवन खत्म हो गया। फिर सामाजिक जीवन के लिये उनके पास समय नहीं रहता है। इसलिये हमारे पास तो गाँव में देने की व्यवस्था थी, बेचने की नहीं। गाँव में लेशमात्र व्यापार

नहीं चलता था, गाँव में सब कुछ देने के लिये होता था, बेचने के लिये कुछ नहीं। व्यापार नहीं, गाँव में देना ही देना है, बेचना कुछ नहीं है। तो वो देने की व्यवस्था जब तक थी, तो अच्छे से सब कारीगर लोग सामाजिक जीवन जी रहे थे, क्योंकि उसमें समय होता है, उनको पता है कितने मेरे घर है, घर में क्या क्या देना है, उस हिसाब से वो काम करता रहता है। पहले कारीगरों के गाँव और घर बने हुए होते थे। बड़ी अगर बस्ती है तो घर भरे रहते थे, अगल बगल के गाँव बँटे रहते थे, हमारे इलाके में यह व्यवस्था अभी भी है, गाँव और घर बँटे हुए है। एक गाँव में बगल के गाँव का कुम्हार आके बर्तन नहीं बेच सकता है अभी भी। अगर बेच लेगा तो उस गाँव के कुम्हार उस से जुर्माना वसूल करेंगे कि कैसे बेचा। यह सम्भव है। ये कुछ व्यवस्थाएं अभी भी चल रही हैं तो उसमें लोगों को अपना सामाजिक जीवन जीने का भरपूर समय मिल जाता था। और सारी कलाएँ पनपती थीं, क्योंकि अभी जैसे एक बात है कि नदी जैसे धीमे–धीमे बहती है तो बहुत कुछ पनपता है, वायु जब मंद–मंद बहती है तो बहुत कुछ पनपता है। जब ये दोनों तीव्र गति में आ जाएँ तो बहुत कुछ खत्म हो जाता है, बहुत विनाशकारी है। तो इसी तरह से जीवनशैली अगर धीमी गति की है तो बहुत कुछ पनपता है, जीवनशैली अगर तीव्रगति की हो जाय तो खत्म हो जाता है बहुत कुछ। तो भारतीय जीवन शैली बहुत धीमी गति की थी, कोई जल्दी नहीं होती थी किसी को। जब जीवनशैली धीमी गति की होती है तो सोच की गति बहुत तीव्र रहती है। अगर जीवनशैली तीव्र गति की हो जाय तो सोच की गति एक दम मंद पड़ जाती है। किसी के पास सोचने का ही समय नहीं रहता है, ये एक गड़बड़ सी हो जाती है। तो हमारे पास में बहुत जीवनशैली धीमी गति की थी जिसमें इतनी कलाएँ पनपीं और उनकी व्यवस्थाएँ भी।

कलाओं को पोषण की जरूरत होती है, कला अपने आप में नहीं जी सकती, उसका तो पोषण करना पड़ता है। पोषण कौन करे, कैसे करे। हर जाति का अपना जातिपुराण है, और गाँव में जितनी जातियाँ थी ये सारे कलाकारों के पोषण की जिम्मेदारी ये लोग ले लिये थे। चर्मकार लोग 5

जातियों का पोषण करते थे। कपड़े बुनने वाले लोग 5 जातियों का पोषण करते थे। यादव 7 कलाकार जातियों का पोषण करते थे। इस तरह हर जाति के जिम्मे बहुत सारी कलाकारों के पोषण की जिम्मेदारी थी, और उनका पोषण वे करते थे। आज भी हमारे पास में आते हैं, जातिपुराण बोलने वाले लोग- जातिपुराण बोलने वालों को क्या दिया जाता है और देने की कुछ पद्धतियाँ है – भिक्षा, दान, दक्षिणा, मान, मर्यादा, न्यौछावर, शगुन और एक बात होती है हिस्सा; देना पड़ता है। तो भिक्षा किसको होती है– दीक्षाबद्ध लोगों को भिक्षा। छात्रों को, सन्यासियों को भिक्षा होती है। दान किसको दिया जाता है–विद्वानों को दान दिया जाता था। कोई बहुत बड़ा संगीकार है उसको दान दिया जाता था या कोई साहित्यकार है उसको दान दिया जाता था। दक्षिणा किसको दी जाती है–गुरूतुल्य जो होते थे उन्हें दक्षिणा देते थे। उसमें भी एक था कि दक्षिणा देने वाला गृहस्थ हो, फिर उसकी इच्छा भी हो दक्षिणा देने की, तो उसको दक्षिणा देना है। फिर मान – बस्ती में जितना कारीगर समाज रहता था, हर एक का मान करना है। कुटुम्ब में मर्यादायें होती थीं सबकी। फिर उस में बहुत सारा न्यौछावर होता था। ऊपर से घुमाकर डाल दिया जाता था। आज तो 5 रूपये 10 रूपये डाल देते हैं, तो क्या करते ये लोग, उस समय सोने के फूल बने होते थे वो घुमाकर के डाल देते थे। या चाँदी के फूल या मोती न्यौछावर किये जाते थे। बहुत वर्णन आता है मोती न्यौछावर कर दिये गए। एक चीज ये है कि हिन्दुस्तान में सोना बिकने वाली चीज नहीं थी। सोना कभी नहीं बेचा जाता था हिन्दुस्तान में। हिन्दुस्तान में 4–5 चीजें थीं जो नहीं बिकती थीं। अन्न नहीं बेचा जाता था। अन्न बेचना पाप था। और उसके बाद कथायें नहीं बिकती थी। ज्ञान नहीं बिकता था। और फिर सोना भी नहीं बिकता था। ये सारी बाँटने वाली चीजें थीं। सोना भी बाँटते थे। शायद पहली कीमत सोने की हिन्दुस्तान आजाद होने के बाद ही लगी है। कभी लोग सिक्कों को गहना बना लेते थे कभी गहनों को सिक्का खुद ही अपना करके रहते थे। बिकने वाली चीज नहीं रही है। बाँट देते थे लोग। क्योंकि अभी भी हमारे पास दशहरे के दिन सीमा उल्लंघन को जाते हैं महाराष्ट्र वगैरह में, और वहाँ से जब लौटते हैं सोना चाँदी बाँटते है। पत्ते लेके आते हैं एक पत्ता सोना माना जाता है, चाँदी माना जाता है, वो लाके बाँटते है। सीमा उल्लंघन कर के जो भी बाहर जाता था वो लौट के सोना चाँदी बाँटता था। बेचता नहीं था गाँव में, बाँट देता था लाकर करके अपने सारे लोगों को। वो हमेशा बाँटने वाली चीज रही है बेचने वाली नहीं। तो ये न्यौछावर वगैरह ये सब देना है, सोना उस में दे दिया जाता है। फिर एक जाति पुराण बोलने वाला समाज है, इनको भिक्षा दान दक्षिणा नहीं था, इनको एक प्रतिशत होता था हर एक की कमाई का। हर एक की कमाई का इतना हिस्सा इन्हें देना है। वो आते थे, हर एक की कमाई

देख कर के औसतन निकालकर अपना हिस्सा ले करके चले जाते थे। 5–7 दिन रहते कथायें सुनाते, जाति पुराण में ये सृष्टि कैसे बनी, ये दुनिया कैसे बनी और दुनिया में कौन–कौन सी जाति कैसे पैदा हुई, उस में हमारे समाज के लोग कैसे पैदा हुए और इनकी व्यवस्था क्या थी। दूसरे समाजों के साथ इनका आपसी रिश्ता क्या था। ये सारी चीजें उस में आ जाती थी। कौन–कौन राजा बना, कितनी लड़ाइयाँ हुई। क्या है ना हिन्दुस्थान में राजाओं की कोई जाति नहीं थी। हर जाति वाला राजा बना है। ऐसी कोई जाति नहीं जिस के लोग राजा नहीं बने हैं। यहाँ तो सभी जाति के लोग राजा बने हैं। राजाओं की और वैद्यों की कोई जाति नहीं रही है। सभी जाति वाले राजा बन जाते थे, सभी जाति वाले वैद्य बन जाते थे। और फिर वो पूरा ये वंशवृक्ष रखते थे अपने पास पूरा रिकार्ड। इस तरह के बहुत से लोगों को व्यवस्थित कर दिया गया था, अच्छे से। उस में तो फिर और बहुत सारे लोग थे। जैसे भिक्षावृत्ति में लोग सुबह 3–4 बजे से लोग चालू हो जाते थे। सुबह 4 बजे के आसपास में एक भिक्षावृत्ति वाला आता था 3:30–4:00 बजे के आसपास में तो छोटा सा डमरू ले करके और बड़ी तीखी आवाज में गाता हुआ निकलता था। उसका काम था शैतानों को भगाना गाँव से, पिशाचों को भगाना। तो नींद से बड़ा पिशाच और क्या है। दूसरा था एक जो घंटा और शंख लेके आता था वो लोगों को सोने नहीं देता था। तीसरा फिर, एक गोसाँई आ जाते थे जो एकतारा लेकर के, खड़ताल लेकर के बहुत अच्छा गाते हुआ निकलते थे। और उसके बाद फिर एक हरिदास आ जाते थे। पहली भिक्षा हरिदासों को मिलती थी। जब औरतें रंगोली डालती रहती थी तो वह कूदकर आकर बैठता और उसके सिर में भिक्षा डाली जाती थी। और उसके बाद जंगम लोग होते थे। जब लोग कामों के लिये बाहर निकले थे तो ये जंगम लोग वैराग्य के गाने सुनाते थे लोगों को। कामों पर जा रहे हैं तो इनको वैराग्य के गाने सुनने में आते थे। कुछ देर तो रहे इनके दिमाग में कुछ वैराग्य। ये लोग गाते थे, ये 9 बजे सुबह तक चलता था। और उसके बाद, 9 बजे के बाद से 10–11 बजे फिर गाँव में कोई सँपेरा आ रहा है, कोई बन्दर लेके, कोई रीछ लेके, कोई बैल लेके, इस तरह के बहुत लोग आ जाते थे। खैर आज ये तो सब भिखमंगे जैसे बन गये हैं मगर हम लोग इनको लोक शिक्षक बोलते थे, ये लोक शिक्षक की भूमिका निभाते थे। जब गाँव में बच्चे बूढ़े रह जाते थे तो एक सँपेरा आ करके साँपों के बारे में जैसे बताता है, हम लोग जैसे देखे हैं साँपों की प्रजातियों के बारे में बताते थे। भाँति–भाँति के साँप, एक तक्षक साँप होता है वो ले करके आते थे। बड़ा अच्छा बताते थे। बड़े रंग का रहता था वो तक्षक साँप। सिंदूर का रंग रहता था, काजल का रंग रहता था, उस में बहुत कुछ रहता था। तो वो बताता था कहानी कि ये साँप का पूर्वज परीक्षित को काटा था। और परीक्षित जब मर गया तो परीक्षित की

रानी ने इसके ऊपर सुहाग के जो सारे चिह्न थे फैंक दिए थे और ये उसकी निशानियाँ है पूरी, काजल भी है, सिंदूर भी है, मेहन्दी का भी रंग है। वो सब निकालकर इस पर फैंक डाली थी तो जब से इस रंग का हो गया है, उसको ढो कर घूम रहा है ये। तो वो उस तरह की साँपों की बहुत जातियों के बारे में बताता। ये सब बच्चों के हाथ में पकड़वाता भी, गले में डालकर भय निकलता। तो इसी तरह बहुत सारे जाति वालों का ये काम था, तो कभी ये एक तरह के लोक शिक्षक का काम करते थे, लोगों के दिमागों से भय निकालते थे ये सारी चीजों के बारे में। कभी इनकी भूमिका रही है। तो अभी क्या है हमारे पास में कला की उपयोगिता को देखते है लोग। कारीगर के पास बहुत सारे लोग आते हैं ना, उपयोग में आने वाली चीजें बनाओ ऐसी बात आती है। तो कला की उपयोगिता ठीक थी, मगर कला की समाज में भूमिका क्या होती थी। कला के द्वारा क्या–क्या परिवर्तन होता था। मानस कैसे बनता था। राजाओं के काल में कलाकारों का सिंहासन राजाओं के सिंहासन से एक बालिश्त ऊँचा रहता था। रखा जाता था क्योंकि वे लोग चाहते थे कि कला के द्वारा समाज का एक मानस ऊँचा उठता है, समाज की एक पसंद बनती है। समाज की पसंद को ऊँचा उठाना है, समाज का एक ऊँचा मानस करना है जो कलाओं के द्वारा होता है, कलाकारों के द्वारा होता है। इसलिए बहुत मान करते थे लोग कला का। अध्यात्म की पहली सीढ़ी होती है कला। क्योंकि कला से सौंदर्य दृष्टि पैदा होती है और सौंदर्य दृष्टि है तो फिर आदमी किसी को देखकर नहीं जीता है वो अपने आप में बहुत सुंदर ढंग से जीने की कोशिश कर लेता है। कला से एक सौंदर्य दृष्टि, अंग्रेजी में शायद उसको "एस्थेटिक" बोलते है। "एस्थेटिक" अगर आदमी को नहीं है तो "स्टेटस" के लिये जीता है फिर। किसी को देखकर जीने वाला हो जाता है कि मुझे तो उसकी तरह जीना है। अपनी तरह नहीं है। अगर सौन्दर्य दृष्टि है तो अपने आप में बहुत सुन्दर ढंग से जी लेता है। मुझे अच्छा लगता है मैं ऐसे जी लूँगा। वो किसी को देख कर नहीं जीता है। जब किसी दूसरे को देखकर जीने वाला होता है तो उस में फिर ईर्ष्या, राग, द्वेष, क्रोध ये सब पैदा होना चालू होता है। जब वो अपने से अपने हिसाब में जीता है तो फिर किसके ऊपर गुस्सा करेगा। उसके अंदर से ये सारे

लक्षण सहसा खत्म हो जाते हैं। तो ये एक ये भी पद्धति है कि अध्यात्म की पहली सीढ़ी कला है। और कला से समाज का मानस बहुत ऊँचा ऊठता है। ये कलाओं की भूमिका रही है। कला मनोरंजन के लिये कभी नहीं रही। अब जैसे जातिपुराण बोलने वाले ये जो सारे लोग आते थे इनको देखते थे हम। आम जन सामान्य की भाषाएं तो लोक भाषाएं थी, मगर ये आ करके प्रान्तीय भाषाओं में कथायें सुनाते थे। ग्रन्थों की बातें सुनाते थे। तो उस समय का जनसामान्य इन लोगों के द्वारा सहज ही ग्रन्थों की भाषा को भी जानता था। ग्रन्थों से, शास्त्रों से, उनकी भाषाओं से वे अनभिज्ञ नहीं थे। अपनी भाषाओं को बोलते हुए उन भाषाओं को भी जानते थे। और दूसरी बात बहुत बार हम लोग देखे कि जब यक्षगान होता है तो उस समय का समाज उसको बैठ कर देखता था, खूब बैठकर देखता था। तो हम पूछे क्या देखे इसमें, क्या देखना है। तो एक बजुर्ग आदमी बोला, ''देखो गुरुजी हमारी बहुत लोगों की जो समस्या क्यों होती है, ये सारी चीजें यक्षगान में बहुत सारी जगहों पर वो समस्याओं के समाधान सहज मिल जाते हैं। तो समस्याओं के समाधान मिलना है और फिर अपनी प्रतिभा को कितनी तरह से उपयोग में लाया जा सकता है उसमें वो सहज पता लगता था।'' कहानियाँ ऐसी रहती थी जब आये आदिलाबाद में वो मांदोकोरला जो है कथा सुना रहा था। तो वो जब लड़की तपस्या करके वरदान माँगती है तो कैसे–कैसे माँगती है। वो तो एक ही संतान दिया था, है ना परमात्मा तो एक ही संतान दिया था। मगर ये अपनी बुद्धि का प्रयोग कर के, परमात्मा को भी मजबूर कर के 6 संतान ले लेती है। तो ये सारी चीजें उस में मिलती थी। एक बार जब एक भिक्षावृत्ति वाला आया तो उसकी हम कथा सुने। रात में बैठे खाना खा के कथा जब बोलने लगा तो क्या बोला और सुबह में कथा खत्म किया पाँच बजे के आस पास। तो सारी रात में कथा इतनी बोला वो कि एक राजकुमारी अपना शृंगार कर के दरवाजे के बाहर पैर रखी, दहलीज के बाहर पैर रखी। हो गयी कथा पूरी। रात भर में इतना सुना दिया वो। कैसे सुनाया। रात भर में इतनी कथा तो वो सुना रहा है राजकुमारी का स्नान हो रहा है, किस तरह से स्नान हुआ, केशों का शृंगार हुआ। केश बाँधने के कितने ढंग है, उसमें कौन–कौन सी सुंगधित पदार्थ डाले गए, वो कैसे तैयार होते हैं, फिर उस में अलंकार का महत्त्व, मोती उस में, स्वर्ण है, मोती है, रत्न है। मोती कैसे बनता है, मोती का शृंगार में क्या महत्त्व है, मोती का आयुर्वेद में क्या महत्त्व है, मोती को शरीर में कहाँ धारण करने से क्या होता है, ग्रहों के हिसाब से मोती का क्या महत्त्व है, ये सारी चीजें है। इसी तरह से एक एक रत्न के बारे में, इसी तरह से मेंहदी के बारे में, हर सारी चीज के बारे में इतनी भयंकर जानकारी वो दिया है, बहुत ग्रंथ पढ़ने के बाद भी हम लोग ये जानकारी नहीं प्राप्त कर सकते हैं। सहज वो लोगों को जानकारी देते थे। मैं हमेशा ये बात

बोलता हूँ उस समय समाज लाइब्रेरी नहीं जाता था। लाइब्रेरी समाज के पास पहुँच जाती थी। पुस्तकालय समाज के पास आसानी से पहुँच जाता था। ऐसे–ऐसे जातिपुराण बोलने वाले लोग को देखे है जो एक–एक आदमी 150 कथा सुनाता था, कहानी। लिखना पढ़ना आता नहीं था पर 150 कहानी–200 कहानी सुनाने वाले लोग थे और जो हर कथा पाँच दिन से कम में नहीं सुनाते थे। पाँच दिन कथा सुनाते थे। लोग अपने कारीगिरी के काम छोड़–छोड़ कर भागते तो नहीं थे, वो काम करते हुए बैठा है और सुन रहा है। बस था, सहज ज्ञानी हो जाता है आदमी और क्या चाहिए उसको, लय में आ जाते थे, उसकी ताल में आ जाता था पूरा। वो एक अजीब था। अभी बीच में कुछ लोग छोटी सी "एप्लिकेशन" तैयार करके लाए, मुझे उसके बारे में बता रहे थे, तो मैं सहज पूछ लिया आवाज कैसे निकलती है? हँसने लगे गुरू जी इसका आवाज से क्या लेना देना है? मैं बोला क्यों नहीं है आवाज से लेना देना? क्योंकि जो नाद है उसका सीधा सम्बंध हमारे शरीर से है, ये तो समझना पड़ेगा। बस में बैठे जा रहे है, कुछ तो नहीं कर रहे है, कुछ भी नहीं करते हैं, फिर भी थक जाते हैं। क्योंकि बस की जो आवाज है उसका हमारे शरीर के साथ कोई रिश्ता नहीं कोई संम्बध नहीं है, उसकी गंध का हमारे शरीर के साथ कोई सम्बंध नहीं है, थक जाता है आदमी। ऐसे ही बहुत जगह होता है एक कारखाने में अगर घुस के निकल जाये, तो आधा घंटा तक आदमी, आदमी नहीं रह जाता है। दिमाग इतना परेशान हो जाता है। आवाजों को सुन सुनकर, आवाजों को देखकर के तो ये तो सीधा सम्बंध होता है। हमारे पास में बहुत अच्छा ये सारी चीजों को रखा गया था। इसलिए इतनी तरह के घुँघरू बनते हमारे पास में, एक बहुत छोटा घुँघरू होता है उसको गज्जा बोलते है, उससे बड़ा घुँघरू होता है उसे मोवा बोलते हैं तेलगु में, उस से बड़ा होता है उसे घुँघरू बोलते हैं फिर उस से बड़ा होता उसे घंटा बोलते है भाँति–भाँति के। जब दस लोग मिलकर के नृत्य करते तो सब लोग गज्जा बांधते हैं, जब दो लोग नृत्य करते हैं तो मोवा बाँधते हैं जो उस से बड़ा है घुँघरू है फिर इस तरह से है। बैलों के गले के घंटे, गाय के गले का घंटा, भैंसे के गले का घंटा, बकरी के गले में कैसा घंटा होना चाहिए, बैलों के कितने तरह के घंटे हैं। ये सारी चीजों के नाद को लोग जानते थे। बैलगाड़ी देख के लोग बता देते थे इस में कितना वजन भरा हुआ है। कि वजन लेकर के गाड़ी जा रही है तो एक तरह का घंटा बाँधा जाता था। और जब प्रयाण करने के लिये छोटी गाड़ी तैयार करते थे तो उसमें बैलों के गले में घुँघरू भी बाँधा जाता था। अलग–अलग समय–समय पर अलग–अलग बाँधा जाता था। हल जोतते समय उनके गले के घुँघरू अलग होते थे, क्योंकि उस समय बैल कैसे चलता है, उसके कैसे हिलने से कैसी आवाज आएगी जिससे बैल को आनंद आएगा। बैल मस्ती में चलता था।

घोड़े के घुँघरू अलग होते थे, गधों के घुँघरू अलग थे। इनकी चाल कैसी है, उसमें कैसे बजने से ये सब होता था। ये नाद का ज्ञान उन लोग को भरपूर था पूरा क्योंकि नाद का सीधा सम्बंध हमारे शरीर के साथ है। नटराज की मूर्ति में क्या है, पंचमहाभूत हैं, गोल मुख मंडल–भूमि, उड़ते हुए बाल–वायु, जटा–अग्नि, गंगा–जल, चंद्रमा–आकाश ये सब पंचमहाभूत हैं। पंचमहाभूत जब मिलते है तो नाद की उत्पत्ति होती है, डमरू नाद है। नाद है तो लय है, बिना नाद के कोई लय नहीं है। पैदा होते बच्चा नहीं रोया तो फिर नहीं है। नाद हमारे चैतन्य में होने का प्रतीक है। नाद हमारे वैभव का प्रतीक नहीं है। नाद को हमारे हर कार्य में आगे रखा जाता, नाद हमारे चैतन्य में होने का प्रतीक है। नाद है तो हम चैतन्य में है। प्रकृति की सारी आवाजें अगर बन्द हो जाएं तो हम शायद पत्थर बन जाएं। हमारे हिलने डुलने के लिये कोई कारण नहीं रह जाता है। तो ये लोग ये बात जानते थे। मगर कैसा नाद होना चाहिए, कैसे नाद से क्या होता है आदमी के मानस में ये तो वो लोग जानते थे काफी अच्छे से इस पर अध्ययन किये थे। और वो सारी चीजें को रखे थे, जितनी भी टैक्नॉलाजी थी उस समय की रही है। चक्की पीसने के गीत हैं, कातने के गीत हैं, बैलगाड़ी के अपने गीत हैं, हर जगह के अपने गीत हैं। ये सारी चीजों से एक नाद निकलता था, नाद से लय बनता था और लय से गीत बनते थे। आज शायद ही मोटरसाइकिल पर जाते समय किसी के अंदर कोई गीत बने। या आधुनिक कारखाने में गीत बन जाये ऐसा लगता नहीं है। मगर उस समय ये सारी चीजों के गीत बने थे। जो लय बनती थी लय से संगीत बन जाता था। तो ये नाद का ज्ञान या सारी चीजों का ये सब कुछ भिक्षावृत्ति वाले लोग बहुत अच्छी तरह से सारी चीजों को संजो के रखे हुए थे और समाज उनकी बहुत सुंदर ढंग से व्यवस्था कर के रखता था तो वो चलता रहा। बहुत तरीके के वाद्य बनते थे। जो मैंने बताया था गुड़बुक्का जो सुबह 4 बजे आता था उसका जो डमरू होता था वो एक लकड़ी का विशेष बनता था। उस में ये कड़ी जो होती थी इमली की जड़ों की होती थी और उस पे जो चमड़ा है खरगोश का चमड़ा होता था। कुछ वाद्यों पे बकरी का चमड़ा होता था। इतना ही बड़ा आदिवासियों का वाद्य होता है उसको तपकटा बोलते है तेलगु में उस पर लंगूर का चमड़ा चढ़ाया जाता है। नगाड़े पे भैंसे का चमड़ा होता है। फिर एक वाद्य ये होती है गोरफल, जो गोह होती है ना उसका चमड़ा चढ़ाया जाता है। एक वाद्य पे बिल्ली का चमड़ा चढ़ाया जाता है। तो ये सारी चीजों के चमड़े अलग–अलग थे। उनकी अलग–अलग आवाज थी, अलग–अलग नाद था। सब कुछ अलग था, अब तो सारे वाद्यों पे प्लास्टिक ही आ गया है ना। गड़बड़ सी हो गयी है, हर वाद्य पे प्लास्टिक सा दिखाई दे रहा है। मगर उस समय हर वाद्य का चमड़ा भी अलग– अलग था। चमड़े के हिसाब से उनकी

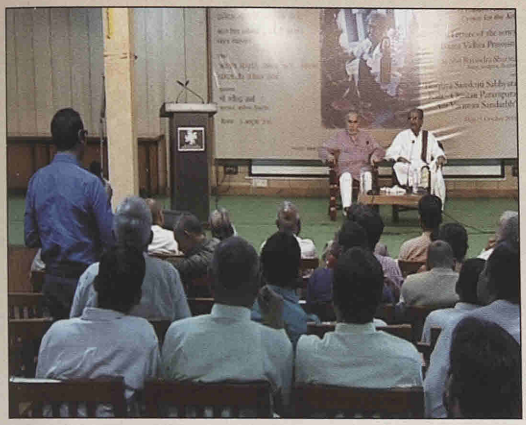

आवाजें भी अलग–अलग थीं। आवाज के हिसाब से लोगों का हिलना डुलना सब अलग हो जाता था। बहुत अलग, बहुत सारे वाद्य थे, किसी वाद्य पे हिरण का चमड़ा चढ़ता था, किसी वाद्य पे झिल्ली चढ़ती थी किसी बीज की। इस तरह से हर वाद्य ये भाँति–भाँति का अध्ययन होता है। मैं तो कई लोगों को बोला हूँ जितनी जातियाँ सबका अपना वाद्य, अपना संगीत, अपना नृत्य है और वाद्यों की सामग्री सब लोगों की नहीं है। वो बड़ा ताज्जुब लगता है जो सहज ही हमारे पास था सब खत्म हो गया।

देखते–देखते सब दो पीढी के अंदर कहाँ चला गया पता नहीं। तो ये क्या हैं देखते हैं कि बड़े कारखाने की व्यवस्था और छोटे कारखाने की व्यवस्था में जो गड़बड़ रही है यही रही है ना। छोटे कारखाने ये तो वो डिजाइन पैदा कर सकते थे क्योंकि एक दर्जी के पास जाएँगे आपका माप लेगा, आपका बच्चा जाएगा बच्चे का माप लेगा, पिता जाएगा पिता का माप लेगा। तो इसका मतलब है वो हर एक के लिए डिजाइन कर रहा है। मगर बड़ा कारखाना ऐसा नहीं कर सकता है। वो एक साइज बनाएगा छोटा हो या बड़ा हो फसा लो अब। वो मजबूर है। वो हर एक के लिए डिजाइन नहीं करेगा। एक जुलाहा अपने करघे पे 360 डिजाइन की साड़ी बना सकता है। हर एक के लिए साड़ी बना सकता है। एक सुनार अपनी भट्टी पर 360 ढंग के मंगलसूत्र बना सकता है, है ना। क्योंकि ये लोगों को डिजाइन बदलने में ना तो समय लगता था ना तो पैसा लगता है। बहुत तुरंत एक सैकेंड में डिजाइन बदल देंगे, पाँच मिनट में डिजाइन बदल देंगे, ना पैसा लगना है ना समय लगना है। बड़े कारखाने शायद ऐसा नहीं कर सकते हैं, इसलिए छोटे कारखाने जब होते हैं समाज बहुत रंगीन और विविधता से जीता है। बड़े कारखाने में समाज एक समान हो जाता है, पूरा का पूरा। शायद वो लोग नहीं कर सकते, हर एक के लिए डिजाइनिंग, उनके, बस का नहीं है। आज अगर सारा समाज खड़ा हो जाए हमारे डिजाइन का कपड़ा हमको चाहिए तो शायद इनके बस का नहीं होगा, ये शायद नहीं कर पाएँगे। तो उस समय की टैक्नोलोजी ऐसी थी कि इतने डिजाइन, इतनी कलाओं की उत्पत्ति तो कर सकती थी। और जैसे एक सुनार जैसे बनाता था, एक छोटी बच्ची

के लिए वो गहना बनाता था फिर बच्ची जरा सी बड़ी हो जाए तो उसके लिए भी गहना होता था, जब बच्ची चलने फिरने लग जाए तो उसके गहनों का डिजाइन बदल जाता था, जब थोड़ा सहेलियों में खेलने लग जाए तो उसके गहनों का डिजाइन बदल जाता था, जब वो रजस्वला होती तो उसके गहनों का डिजाइन बदल जाता था, जब उसकी शादी होती तो उसके गहनों का डिजाइन पूरा बदल जाता था, दुर्भाग्य से विधवा हो जाती तो फिर उसके गहनों का डिजाइन बदल जाता था, तो हर समय संदर्भ के लिए वो लोग डिजाइन बनाते थे, हर समय और संदर्भ के लिए वो लोग डिजाइन बना लिए थे क्योंकि वो सामर्थशाली टैक्नोलोजी थी, उसमें सब सम्भव था। वो लोग सब कारीगर तो नहीं मानते ये खुद को कलाकार ही मानते थे, सब कलाकारों में गिनती आते थे। उनका काम था। इतनी तरह की चीजों की सृष्टि करते रहते थे बैठ कर के किसको किस चीज की जरूरत है किस तरह की चीज की जरूरत है और उसके लिए कैसे सही रहेगा, अच्छा रहेगा, कौनसा रंग किसके लिए चाहिए वो शायद देख करके उसके कमी को समझ करके उसके लिए डिजाइन बनाते रहते थे शायद। और समाज उसको इस्तेमाल करता रहता था। तो ये बहुत सारा कुछ रहा है। हमारे पास में बाकि फिर शास्त्रीय कलाएँ अलग हैं। ये तो सब लोक कलाओं आ जाता है शास्त्रीय कला में क्या फर्क है। लोक कला समाज की सामाजिकता का प्रतीक है, समाज कितना सामाजिक ढंग से जी रहा है वो लोक कलाओं से पता लगता है। लोक नृत्यों से पता लगता है। जब समाज टूटने लगता है, लोक कलाएँ खत्म हो जाती हैं, लोक विद्यायें खत्म हो जाती है और शास्त्रीय कलाएँ समाज की साधना की प्रतीक है कि हर विषय में ये समाज कितनी साधना किया है, तो साधना है। शास्त्र तो लोक कलाओं के भी होते हैं। ये नहीं है कि शास्त्रीय कलाओं के शास्त्र होते है और लोक कलाओं के नहीं होते है, ऐसा नहीं है। लोक कलाओं के भी अपने शास्त्र हैं मगर लोक कला समाज की सामाजिकता का प्रतीक है। हर जाति के अपने वाद्य हैं अपने नृत्य हैं तो उनके समाज में होगा, जब ये सारा समाज पूरे गाँव में इकट्ठा होगा तो गाँव का एक वाद्य होगा, गाँव का एक नृत्य होता जो सभी लोग करते हैं मिलकर के वो सामाजिकता का प्रतीक

था। अपने–अपने समाज में वो अपना–अपना करेंगे पर गाँव में गाँव का करेंगे। इस तरीक से हर इलाके का नृत्य अलग अलग था, गाँव के वाद्य अलग थे, नृत्य अलग थे। वो देख करके बोल सकते थे फलाने गाँव का नृत्य है ऐसे तो ये सब कुछ जो रहा है ना, बहुत कुछ इस तरह से तो और क्या, क्या बताऊँ और। चलो आप लोग कुछ पूछना हो तो पूछ लो।

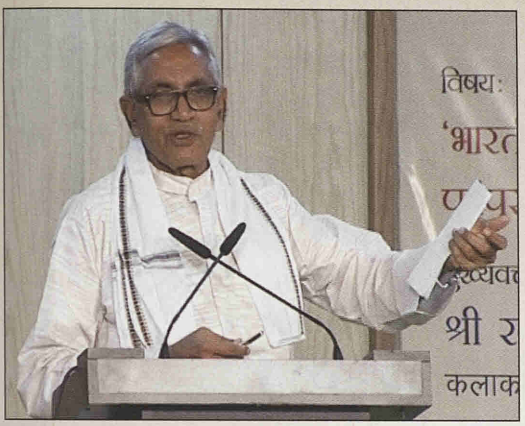

डॉ. महेश शर्मा: आप सब मुझ से सहमत होंगे कि इस समय मेरे कुछ बोलने की जरूरत नहीं है। जिस लय के साथ हम सब, मैं भी इस कथा में डूबे हुए थे। मैं कुछ भी बोलूँगा तो रंग में भंग वाली बात होगी। मैं चाहूँगा कि इसी वातावरण को आप चाय पीते हुए भी जीते रहे। और जब लौटकर आए तो कुछ प्रश्न और टिप्पणियों वाला अगला सत्र उसका संकेत हो ही गया है। आप सब की तरह से मैंने भी इस का पूरा आनन्द लिया है और मैं आदरणीय रवीन्द्र शर्मा जी के प्रति जिन्हें हम सब गुरू जी बोलते हैं, मेरा करीब 20 वर्षों का समबन्ध है। कई बार उनके यहाँ गया हूँ और हम सबके साथ एक कड़ी रही है जिसका मित्र पवन जी ने शुरू में ही जिक्र किया धर्मपाल जी। उनकी याद आयी तो वो प्रसंग याद आ गया जब आईआईटी दिल्ली की एक गोष्ठी में बताया कि हमारे रहने खाने के ढंग क्या थे और उसी हिसाब से टैक्नोलोजी, प्रौद्योगिकी व्यवस्थाएं उसी हिसाब से होती थीं। घर के पिछवाड़े में लोहा और इस्पात बनाया जाता था उन्होंने बैकयार्ड वर्कशाप का जिक्र किया अभी भी कई देशों में कहीं ब्राजील में कहीं चीन में प्रैक्टिस में है। और मैंने जब कैम्पस छोड़ कर झारखण्ड आना जाना चालू किया, मेरा सौभाग्य था कि ऐसा असुर लोग मेरे सामने खड़े थे। वो क्षेत्र ऐसा था जहाँ आदिवासियों का समूह अच्छा था 8–10 तरह के पुराने ग्रुप्स थे। वैसे मैं भी पुराना हूँ, अंगिरा ऋषि के खानदान का हूँ, अंगीरस हूँ। मुझे बाद में पता लगा कि अंगिरा के ही दो सुपुत्रों में से एक असुर हो गया था। तो मुझे लगा मेरे खानदान के कुछ दूसरे भाई मुझे यहाँ मिल गए। लेकिन मेरी शुरूआत थोड़ी अजीब ढंग से हुई थी। आपको पता होगा कि जनजातियाँ क्षेत्रों में जो बाजार लगते हैं साप्ताहिक–द्विसाप्ताहिक हाट मंडी लगती है वहाँ

8–10 गाँव के लोग बड़ा बाजार है तो 15–20 गाँव के लोग मिल जाते हैं। बाजार के एक कोने में प्रायः एक कलाकार कारीगर जिसका गुरू जी ने जिक्र किया उन में से एक बूढ़ा मेरे सामने आया जिसकी आँखे गहरी लाल सी थीं, मुझे लगा आदिवासी इलाका है तो दारू वगरह लेते हैं पीके आया होगा, ज्यादा पी ली होगी तो एक दम लाल है। लेकिन मेरा अनुमान गलत था इधर–उधर से सुना हुअ था उसकी आँखे लाल इसलिए थी क्योंकि उसने अपने बाप के साथ भट्टियों पर कई वर्षों तक काम किया था, एक लोहे की भट्टी पर। एक प्रिमिटिव ट्राइब जो मिनिस्टरी के हिसाब से टैक्नोलोजी के बहुत प्रिमिटिव लेवल पर उनका अन्तर वही है बहुत प्रिमिटिव लेवल पर जीते हैं। उनको प्रिमिटिव ग्रुप्स कर के चिह्नित कर दिया। देश में 40–45 ऐसी जातियाँ है जनजातियाँ उन में से एक वो भी थे। मैंने पूछा बाबा क्या करते हो, बाबा उम्र में मुझ से बहुत बड़े थे, बाद में तो मेरे गुरू बन गये। अरे बाबा हम लोग पहले लोहा गलाते थे। लोहा गलाते थे तो मुझे धर्मपाल जी की बात याद आ गयी तो मैंने तुरंत पकड़ा ये तो मुझे एक सही आदमी मिल गया और फिर मैंने उससे दोस्ती बनाई। उसके घर आना–जाना, खाना–पीना चालू किया और फिर नगुबाबा उसका बेटा बिफइया, उसका बेटा सुदराम और उसके समाज के लोगों से और फिर धीरे–धीरे मामला बढ़ा तो फिर बिरजिया के साथ, धूमासुर, महतोसुर और फिर पूरा उस ग्रुप के साथ मेरा इंटरेक्शन और मैं आप से बता सकता हूँ, विनम्रता के साथ बता रहा हूँ कोई बड़ी बात नहीं बता रहा हूँ। उनसे मैंने वो सीखा जो बीएचयू या आईआईटी में नहीं सीखा था। मैंने फाउंड्री में काम किया था, इंटरेक्शन के नाते हम लोग इधर–उधर गए थे। आप कल्पना कर सकते हैं कोई स्टील प्लांट होता है तो उसका दृश्य कैसा होता है, आप गए नहीं होगे तो आपने फिल्मों में या कही पिक्चर में कहीं देखा होगा अपने आप में कितना सोफस्टिकेटेड सिस्टम होते है और वर्चुअली वो अपनी झोपड़ियों में पीछे की तरफ भट्टी रहती है कोयला जलता है, आग जलती है। मुझे उनके साथ काम करने का सीखने का मौका मिला। बहुत कुछ सीखा। अब नगुबाबा नहीं है महतो भी गए, धूमा भी गए। उसका बेटा पोता ने साथ में काम किया था तो थोड़ा रिवाइव हुआ चूँकि मेरी मुलाकात ही हुई तो वो 86 साल के थे। लेकिन मुझे संतोष इस बात का था कि मैंने उन्हें यशपाल से गले मिला दिया और प्रधानमंत्री के सामने भी आईआईटी कंवोकेशन हॉल में खड़ा कर दिया। उनको जो सम्मान मिलना चाहिए था उनकी विद्या के लिए, उनकी ज्ञान परंपरा के लिए, उसका थोड़ा बहुत मुझको मौका मिला। धर्मपाल जी के नाते और कुछ बातों के नाते मुझे याद आ गया तो मैंने आपसे शेयर किया। मैंने कहा ज्यादा बोलना मेरे लिए इस समय

आवश्यक नहीं है। हम सब लोग उसी धुन में रहे उसी लय में रहे। चाय का आनन्द लेकर फिर एक बार भीतर आए। मुझे सुनने का पूरा आनन्द दिया इसके लिए धन्यवाद ।

प्रश्नोत्तर सत्र

सुधीर – इस सभागार में आप सबका एक बार फिर से स्वागत है। रस की धारा को प्रवाहित रखते हुए द्वितीय सत्र शुरू करते हैं। इस सत्र की अध्यक्षता करने के लिए मैं आमन्त्रित करता हूँ हमारे इ.गा.रा.क.केन्द्र न्यास के अध्यक्ष श्री राम बहादुर राय जी को।

श्री रामबहादुर राय: पिछले सत्र में जैसे गुरू जी ने ही कहा अगर उसको मैं अपने शब्दों में कहूँ मंदाकिनी और मंद पवन से क्या कुछ मिल सकता है वह हमें मिल गया है। अब इस सत्र में आप पर निर्भर करता है आप गुरू जी से और क्या जानना चाहते हैं और सीखना चाहते हैं तो इस सत्र की जो रूपरेखा है जो हमने सोची थी कि लोग सवाल करेंगे और अगर मान लीजिए किसी को ऐसा लगता है कि गुरू जी के बोले हुए पर टिप्पणी करनी है तो दोनों हो सकते हैं। गुरू जी उसके बारे में बताएँगे और ये सिलसिला जब तक सवाल होगा तब तक चलता रहेगा । आप शुरू कर सकते हैं।

प्रश्न – गुरू जी को नमस्कार। गुरू जी अभी आपने कुछ देर पहले कहा था पहले सभी वर्गों से वैद्य और राजा थे। हमारे भारत के अंदर वैद्य और राजा थे। सभी वर्गों से राजा और वैद्य थे। सर मैं जानना चाहूँगा कि दलित समाज से कुछ राजा और वैद्य रहे क्या ? धन्यवाद

गुरू जी – रहे हैं काफी लोग रहे हैं, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश में तो डोमरगढ़ बहुत है। वो भी राजा रहे हैं। ऐसा बहुत कुछ है। यादव तो बहुत राजा रहे हैं, गुज्जर बहुत राजा रहे हैं। विक्रमादित्य गुज्जर था। आदिवासी गोंड जिनको बोला जाता है उन्होंने 1000 साल हुकूमत की है। ऐसे लोग बहुत रहे हैं। ऐसे ढूंढ़ के निकालते हैं तो बहुत आ जाऐंगे। ये नहीं की राजाओं की कोई ऐसी विशेष जाति करके नहीं रही थी। यहाँ पे अलग एक ये था कि वर्ण में जातियाँ नहीं थी। जातियों में वर्ण था। क्षात्र वर्ण है जाति नहीं है। बहुत जातियों के लोग क्षत्रिय थे। वैश्य वर्ण है जाति नहीं है। बहुत जातियों के लोग वैश्य थे। तो हर जाति की अपनी वर्ण व्यवस्था थी। जाति अपने आप में एक पूर्ण थी। जाति अपने आप में एक परिपूर्ण संसार था दुनिया का। हर जाति वाले जैसे थे पूरा उनको ज्योतिष का ज्ञान तो चाहिए ही चाहिए, खगोल का जो भी मैटिरियल का वो काम करने वाला है जैसे बाँस का वो काम करने वाला है, बाँस का इस खगोल का क्या रिश्ता है वो जानता था। बाँस कौन से नक्षत्र में काटना है क्या–क्या करना है वो जानता था क्योंकि संन्यासी के हाथ में

दंड जो देना है, पहले क्या होता था कि कोई संन्यासी बन रहा है बस्ती में जितना कारीगर समाज है उसको बुलावा देना पड़ता था, वो आते थे, आकर के, ये क्षमा याचना करता था कि मैं अब संन्यास ले रहा हूँ। मेरे संन्यास लेने से तुम सबको आर्थिक नुकसान होगा क्योंकि एक घर खत्म हो जाएगा। गृहस्थ रहता तो तुम्हारा एक घर रहता, तो खत्म हो जाएगा वो खत्म होने वाला है उसके लिए क्षमा करो। उस समय जितने भी कारीगर लोग खड़े है वहाँ पे अपने हाथ की एक–एक चीज देते थे। बाँस का काम करने वाला एक दंड देता था तो उसको ये पता होना चाहिए कौन से नक्षत्र में काटा हुआ बाँस कम से कम 40 साल तक रह सकता है। उसके हाथ में लम्बा चलेगा, ये नहीं हफ्ते भर में कीड़ा पकड़ ले ऐसा नहीं है। तो वो जानता था। बाँस का काम करने वाला दंड देता था, दर्जी झोली देता था, चर्मकार मृग चर्म देता था, जुलाहा कोपीन देता था, कम्बल वाला कम्बल दे डालता था, बढ़ई पादुका देता था, हर कोई अपने हाथ की एक एक चीज दे करके उसको शमशान घाट में छोड़ करके आ जाते थे कि जा अब तू मर गया। उसके बाद उसका संन्यास का कार्यक्रम चालू होता था, तो ये रहा है। उसमें बाँस के काम करने वाले को ये पता होना चाहिए कि नक्षत्रों का ज्ञान उसको रहे। दूसरा उसको पूरे का पूरा डिजाइन का ज्ञान था। कारीगर वही होता था, सृष्टि वो करता था, डिजाइनर वो था, वो इंजिनियरिंग जानता था पूरी। बाँस से कितना दवाइयाँ बनती है और कौनसी बिमारियों का इलाज है उसका वैद्य वही था। उसका अर्थशास्त्र वो जानता था। उसके बाँस की डिजाइनिंग तो करता था, बाँस की कलाकारी वो करता था, डिजाइनर था। वो न्यायशास्त्री था, अपने समाज का न्याय वो खुद करते थे। किसी और के पास नहीं जाते थे। इस तरह हर कारीगर की दुनिया अपने आप में पूर्ण होती थी। सब कुछ तो होते थे ऐसा। उसी में सब कुछ हो जाता था इनका। उसमें वो सम्भव था और हमारे पास में तो बहुत कहानियाँ ऐसी आ जाती है कि जिसके गले में हाथी ने माला डाला उसे राजा बना दिया। ऐसी भी कहानियाँ आती है कोई राजा बनने को तैयार नहीं था, कोई राजा था नहीं, फिर हाथी के गले में माला दे दिए वो जिसके भी गले में डाल दिया माला उसको भी राजा बना दिये। संन्यासी को राजा बना दिये थे एक बार। ऐसा बहुत वर्णन आता रहता है न क्योंकि उनका मानना था कि हाथी सही व्यक्ति का चुनाव करता है। सही राजा का चुनाव हाथी कर सकता है ऐसा करके बहुत कहानियाँ आती है। हमारे पास में कोई इतनी बड़ी प्रतिस्पर्धा नहीं चलती थी क्योंकि जीने के लिए हमारे पास किसी को कोई संघर्ष नहीं करना पड़ता था। उसमें ये सब कुछ चलता रहता था। बहुत सारी जाति के लोग राजा बने हैं। इस पर अध्ययन हो तो बहुत बढ़िया रहे। तो यहाँ जितना जातियाँ हैं कोई न कोई जाति का राजा तो रहा ही है। हर जाति वाले राजा बने हैं।

प्रश्न : प्रणाम गुरुजी, आचार्य जी ने जो कहा उसी से सम्बन्धित मेरा सवाल है। पिछले सत्र में आपने एक वाक्य कहा था कि "अध्यात्म की पहली सीढ़ी कला है।" तो मेरी जिज्ञासा है कि कला, सौन्दर्य और अध्यात्म के क्या अन्तर्सम्बन्ध थे। ये समाज में किस तरह से फलित होते थे और दूसरा सवाल मेरा ये है बतौर स्त्री, उस समाज में स्त्रियों की क्या स्थिति थी।

गुरुजी : हमारी कलाएं व्यय प्रधान रही है, आय प्रधान नहीं। हमारे पास की अर्थ व्यवस्था पूरी छोड़ने के लिए थी। पूरा सबकुछ वे प्रधान छोड़ने के लिए था। छोड़ने का मानस बनाने के लिए बहुत प्रक्रिया थी, ऐंसे ही छोड़ना कोई मामूली बात नहीं है।

उदाहरण के लिए पार्थिव शिल्प और पार्थिक चित्रकला जो थोड़ी देर के लिए बनाते हैं फिर खत्म कर डालते हैं। बहुत सारी चीजें होते हैं, चित्र–गौरी, ये गौरी, वो गौरी काफी बड़ी–बड़ी पेंटिंग्स बनती हैं, फट जाती है। बहुत सुन्दर–सुन्दर बनाते हैं फिर थोड़ी देर पूजा होती है फिर उसको खत्म कर देंगे। बहुत सुन्दर वातावरण तैयार होता है। छोटी सी पूजा करेंगे फिर उसको छोड़ देते हैं। छोड़ते समय दुःख नहीं आना चाहिए, ये मानस बनाने के लिए बहुत कुछ किया गया था कि निर्माण करो फिर छोड़ डालो।

(मुस्करा कर कहते हैं) इससे बड़ी आध्यात्मिकता कहाँ हो सकती है। यहाँ तक कि उनको शरीर छोड़ने में भी दुःख नहीं होता था। ये सब था। तो ये सहज होता था। रही महिलाओं की बात, ये समझें कि हमारे पास पहले आठ तरीके की चीजें धन मानी जाती थीं। धन का एक पैमाना नहीं था। धन भी एक धन था, धान्य भी एक था, पशु भी एक धन था। पशु में गोधन, गजधन, अश्वधन, अजधन ये सब धन माना जाता था। उसके बाद कच्चा माल भी धन माना जाता था। विद्या भी एक धन माना जाता है। जो धन जिसके पास होता है वह उसी हिसाब से धनवान होता था। आज आपके पास 1000 बकरी है 1000 रुपये नहीं है तो कंगाल माने जाएंगे। धनवान नहीं माने जाएंगे। उस समय जो भी किसी चीजों में से कोई भी जिसके पास हो वह धनवान। मगर गाँव का सबसे बड़ा धन माना जाता था धान्य। धान्य मातृशाली धन था और जब तक गाँव में धान्य, धन था। घर में किसके हाथों में रहता था, महिलाओं के हाथों में रहता था। तो देना–लेना, ऋण और ब्याज, दान–धर्म, मान–मर्यादा ये सब महिलाएँ करती थीं। पुरुष इस व्यवहार से दूर था। एकदम दूर था। उसको व्यवहार नहीं पता था। वो मर–मरकर मेहनत करता था। पर ये पूरा व्यवहार महिलाएं करती थी। जबतक धान्य के रूप में धन महिलाओं

के हाथ में रहा गाँव में कोई भूखा नहीं सोया। यहाँ हिन्दुस्तान में अन्न नहीं बिका। बड़े–बड़े कारखाने लगने के बाद नोट को ही धन की मान्यता मिल गई तो सारा समाज कंगाल हो गया। एकदम से कंगाल हो गया। क्योंकि इनके पास जो है धन वो जब नोट बनकर पहली बार पुरुषों के हाथ में आया, पुरुषों के हाथों में आते ही महिलाओं की पूरी सत्ता खत्म हो गई। ये आकर पुकारना चालू किया कि "मैं मर–मर के कमाता हूँ। तू उसका दान करती है, तू उसका मान करती है।" ये भुजाएं लूट के लिए बनीं। तो ये नोट आने के बाद दान कम दावत चालू हो गई। अब सब व्यवस्था दान नहीं दावत ज्यादा होती है। ये तो गड़बड़ हो गयी है। इससे समझ में आता है कि महिलाओं की क्या स्थिति रही होगी क्योंकि हमारी अर्थ व्यवस्था में अध्यात्म के अनुसार होता है कि अहंकार नहीं होना चाहिए किसी को। अहंकार क्यों होता है किसी को? जब विनय का भाव खत्म हो जाए तब अहंकार होता है। दूसरा वह अपने को सर्वस्व मानता है तो अहंकार होता है। तीसरे साधनों का अहंकार होता है। तो यह सब कुछ है। अहंकार नहीं होना चाहिए। इसलिए भारत (की) अर्थ व्यवस्था में व्यक्तिगत कमाई को महत्व नहीं दिया गया था। हमारे पास व्यक्तिगत किसी की कमाई नहीं थी। कमाई परिवार की होती थी। जब तक कारीगर सब थे, कोई एक आदमी ये नहीं बोल सकता मैं अकेला कमाया हूँ। नहीं बोल सकता था। वो कमाई परिवार की थी, कुटुम्ब की थी। तो उस वक्त पुरुष रहा तो उसको काहे का अहंकार होना है वो भी ऋण का भाव मानता था, बच्चे से लेकर मरने वाली बूढ़ी–बूढ़ा सब उसमें है तय हो गई है। आज हर व्यक्ति की अपनी कमाई है। हर महिला की अपनी कमाई है। इसमें इनमें हो सकता है पूरा हो सकता है इनका क्योंकि उस समय प्रश्न ही नहीं उठता था, ये सबकुछ ना। ये सारी चीजें थीं। कोई किसी को दबा के कुचल के रखे ऐसा नहीं था, हर एक की अपनी भूमिका थी। सबका अपना कुछ होना ही है उसमें। व्यक्तिगत कमाई जब चालू हो गई तो फिर वो एक अलग बात होगी। हमारी व्यवस्था में व्यक्तिगत कमाई नहीं थी। जब तक कारीगर–वारीगर थे सब, परिवार की कमाई मानी जाती थी। सामूहिक कमाई मानी जाती थी और फिर ये विचार कि व्यक्ति, वृत्ति, जाति, पुरुष कलाकारों की भी अपने अर्थ व्यवस्था रही है। महिलाओं की बहुत

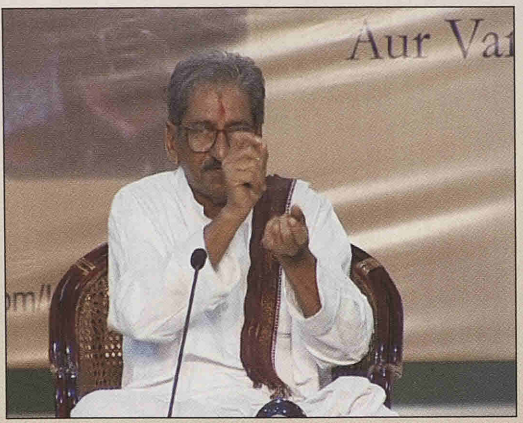

बड़ी भूमिका क्या रही है। महिलाएं साथ में चलती थीं। वो भी सबकुछ करती थीं। वो भी कमाने जाती थी, कथाएँ उनके साथ बोलती थीं। ये सबकुछ होता था। वाद्य बजाना वो भी जानती थी। जब हम लोग देखे तो एक जना कथा सुना रहा था, पाण्डवों की कथा सुना रहा था, उसका गला बैठ गया 1–2 दिन के बाद। अब उसकी आवाज नहीं निकल रही थी। तो उसकी बहन वहाँ उठी "तुम बैठो मैं सुनाती हूँ करके" वह एकतारा लेके तम्बूरा लेके पूरी कथा सुनाने चालू कर दिया उसी ढंग से, उसी तरह से करती थी वो सबकुछ। ऐसा, ये तो ज्यादा गड़बड़ हो गई है ना। शिल्प में बहुत सारी महिलाओं का जिक्र आता है जो मूर्ति बनाना जानती थीं, जो फिर वास्तु की जानकारियां रखे हुए थीं। जो बहुत तरह की काम जानती थीं। ज्योतिष का ज्ञान तो था। वाड़ली नाम की चाण्डाली थी। वो आज से 3 हजार साल पहले वह एक ग्रन्थ लिखी है। "ज्योतिष शास्त्र" जो आज समाज में चलता है, वो ग्रन्थ लोग मानते हैं उसको महाराष्ट्र में काफी है उसका जिक्र है "वाडली" का ज्योतिष का। ठीक है।

प्रश्न : गुरुजी नमस्कार। जितनी भी आपने बातें बताई ये सारी बातें सुनने वाली है और उसको अन्दर उतारने वाली हैं। किस तरह से ये सारी बातें समाज तक पहुंचाई जाएँ कि हम कहाँ थे और कहाँ आ गये क्योंकि आज हमारा पूरा इतिहास बोध वो कहीं और जा रहा है। इसमें तो कोई दो राय नहीं होगी। किस तरह से हम आज की युवा पीढ़ी को इस पुरानी परम्परा के साथ पूरे अच्छे तरीके से जोड़ पाएं क्योंकि ये बहुत बड़ी समस्या है कि हम जा रहे हैं किस तरफ हमें खुद नहीं पता होता।

गुरुजी : वो तो है, ये सब लोग जाने कैसे हो सकता, जिनके हाथ में सामर्थ्य है, जिनका समाज में स्थान है, वो कर सकते हैं बहुत कुछ। एक है कि अतीत हमारा नहीं भूलना चाहिए, अगर अतीत भूलता है तो समाज को तुरन्त बदल दिया जा सकता है। बदला जा सकता है। वो समाज खुद ही बदल जाता है अपने आप। वो अतीत कभी देखना है। अब जैसे कि 1980 तक हम भी जैसे आज की विचारधारा वाले लोग हैं वैसे हम भी थे। हम भी मचलते थे। पंक्ति भोजनों से हमें उठा दिया जाता था। ये सारी चीजों के खिलाफ हम बहुत थे। है ना। पर एक बार क्या हुआ, हम लोग बहुत पेंटिंग सिखाते थे। बुजुर्ग आदमी थे। पेंटिंग सिखाते थे हम। तो जिन्दा रहे उनसे बहुम काम सीखे। उनकी पूरी टेक्नीक सब कुछ सीखे। वो जब गुजर गये, गुजर जाने के बाद में शोक संस्कार में हम भी गये। तो जरा समय था ले जाने के लिए तो बगल में किसी का घर था। लड़का बोला, "आ जाओ ना बैठेंगे अभी तो टाइम है, चाय पीते हैं बैठकर"। जाकर बैठ गये। गुरुजी चाय पीने लगे तो पूछने लगा, बोला

"गुरुजी, ये बताओ कि ये आदमी मर गया है। ये बार–बार बाँस की सीढ़ी क्यों बना रहे हैं। एक बार बनाकर रख सकते हैं ना। इसमें भांति–भांति कपड़े डाले गए। ये हांडी लेकर आ गया कोई मटका लेकर आ गया। अच्छा–भला आदमी था उसको मुण्डन करके बन्दर जैसे बना दिए। इसके मुंह में क्या–क्या डाल रहे हैं, ये क्या है? उस समय तक तो मैं बोलता था कि "हम भी तो इसके खिलाफ बात कर रहे हैं कि ये सब बेकार चीजें हैं बन्द करना चाहिए" कर–कराकर के बाद में ये बच्चा पूछ रहा है तो बताना तो पड़ेगा ही। तो मैं थोड़ी देर के बाद उसको बताया "देखो ये आज यहां पर जो एक आदमी मर गया है तो इसके अंतिम संस्कार में गाँव पूरा इकट्ठा है। हर जाति का एक प्रतिनिधि खड़ा है वहाँ पे। बाँस का काम करने वाला बाँस लाया, कुम्हार मटका लाया, जुलाहा कपड़ा लाया है। चर्म काटने वाला रस्सी लाया है। दर्जी कपड़े के सिए हुए फूल लाया है। सुनार पांच रत्न लेकर आया। नाई मुण्डन करने आ गया। कुम–कुम बनाने वाला गुलाल लाया। हर जाति का प्रतिनिधि अपना सहयोग लेकर वहां खड़ा है और ये सब मिलकर उसका अंतिम संस्कार करेंगे। ये बात मुझे उस दिन दिखाई दी पहली बार, है ना। मैंने उस दिन सोचा कि आज तक तो हम समाज को गाली देते रहे हैं। ये समाज में अच्छाई है या नहीं वो देखा जाए तो उसके बाद न एकदम दृष्टिकोण मेरा बदला। उस दिन के बाद से है ना तो फिर अपने समाज को सारे को अलग ढंग से देखना चालू कर दिया। ये है कि जब धारणाएं टूटती है तो उसे मान लेना चाहिए। अपनी धारणाओं को रखने के लिए लोग बहुत परेशान रहते हैं। है ना। मेरा जिस दिन ये विचार पैदा हुआ उसी दिन पुरानी बातों को खत्म कर दिया, फिर एक नये सिरे से लोग देखे तो बात करने लग गया। ये तो सबकुछ है। इस तरह से ना।

प्रश्न : गुरुजी एक सवाल है। तो आपने कहा कि यह तो प्रलय जैसी थी भारत में आ गई और उस समय अपने 30–40 साल पहले एक शुरु करा कि भई कम से कम बीज में से आपने बचाया है। अब आपको मान लीजिए परिवर्तन करने का अवसर मिल जाए कि भई ये चीज है। ये मेरे समझ में आती है तो उस परिवर्तन का सूत्र चीज कहां से शुरु करेंगे। बदलाव शुरु कहां से होगा और कैसे होगा ये बता दें तो बड़ी कृपा होगी।

गुरुजी : मैं तो अभी इतनी बड़ी कल्पना नहीं किया। लोग खुश जी रहे हैं तो जीने दो। है ना। लोग इस व्यवस्था में बहुत खुश है। जी रहे है तो जीने दो। भाई हर कोई भागदौड़ में लगा हुआ है, खूब अच्छे से। जी रहा है खुशी से। क्या है कि गलती है लोगों की समझ नहीं है। वो ऐसे

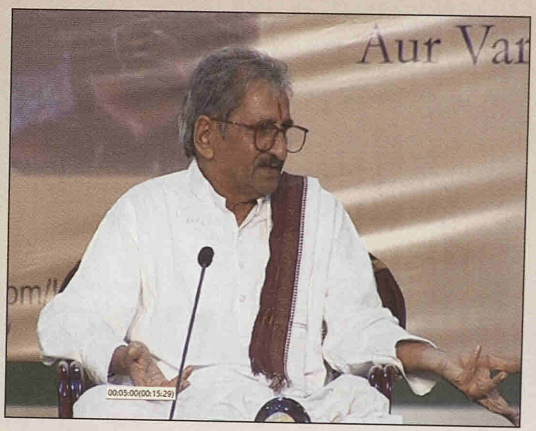

लोग बाहर निकले हैं जो जमीनदारी काल था क्योंकि और जमींदारी का काल हिन्दुस्तान में भयंकर काल रहा है। बहुत भयंकर काल रहा है तो वो जो काल था उसके उस समय समाज का हर आदमी अपने आपको गुलाम मानता था। हर कोई गुलाम हो गया था। किसी को नहीं लगता था कि हम स्वतंत्र हैं। हर एक को लगता था कि हम किसी की दया पे जी रहे हैं। है ना। हिन्दुस्तान आजाद होने के बाद फिर लोगों को लगा कि हम स्वतंत्र होंगे अब जीने की हमारे स्वतंत्रता। लोगों को लग रहा था कि दुनिया में हम अभी आये हैं। है ना। अभी आये हैं। तो वो हिसाब से जी रहे थे। जीने दो भाई इस समय तो जीने दो दुखी कहां हए। अपने दुखी कहां हुए। हम एक बार बाजार में घूमते थे। तो एक आदमी बैल बेचा एक आदमी खरीदा, फिर खरीदने के बाद पैसे भी लेकर रख लिया। उसको बोलता है फिर से कि चलो चाय पीयेंगे। तो ये कहता है कि मैं नहीं चाय पीता। जो बैल खरीदा वो बोला, "मैं चाय नहीं पीता"। बोला बीड़ी ले, बीड़ी नहीं पीता। अच्छा, तम्बाकू खाता क्या, नहीं हम तम्बाकू नहीं खाता। अपनी कोई आदत नहीं है। खाना–खाना और काम करना ये हमारी आदत है। तो ये जेब से पैसे निकाला और उसको दिया, देकर बोला "चल मैं मेरा बैल तेरे को नहीं बेचता मेरा बैल मुझे दे दे।" क्या बात क्यों "तू आराम नहीं करेगा तो वो मेरा बैल मुझे दे दे"। बैल को काम करवा करवा के मार डाल देगा तू। है ना। हाँ। पैसे देकर खींच लिया अपना बैल ले लिया। हां। बड़ा ताज्जुब हुआ कि लगता है कि आज अपनी संतान को 12 से 18 घण्टे काम करने के लिए "खुद की संतान की" (ऐसा सोचने वाले लोग) कभी बैल के बारे में इतना सोच लेते थे।

और ऐसा तो होता ही है। अब ये मेरा थोड़ा सा दुखी होना है लोगों को तो कुछ हो। भई देखो ये सारे समाज को हम देख रहे हैं ना किसी को जंजीरों से जकड़ के बांध कर रस्सी से बांध कर अंधेरी कोठरी में डाल

दें और उसको धीरे उसके कानों में फूंक दे कि सुबह होते ही तू राजा बनेगा। (सब हँसते हैं) तो उसको रात की तकलीफ महसूस नहीं होती है। है ना। सारा समाज ऐसा ही लगा हुआ है कि कल को पता नहीं कुछ हो जाएगा। वो थका हुआ है, क्या करे उसके लिए। तो कहीं ना कहीं शुरुआत करनी होगी। एक समझ बनाने की बात करना होगा वो तो धीरे–धीरे होगा। हाँ।

प्रश्न : गुरुजी प्रणाम। समाज की सामाजिकता का प्रतीक है लोक–कला और शास्त्रीय कला जो है वो समाज की साधना का प्रतीक है बहुत अच्छा लगा मुझे। मैं ये जानना चाहूंगी अपने इस वर्तमान संदर्भ में और आपके अनुभव में अगर हम लोग अपनी सामाजिकता खो रहे हैं और लोक कलाएं जैसे लुप्त होती जा रही हैं तो क्या हम ये अपनी शास्त्रीय कला को और साधना को भी बचा पायेंगे या ये दोनों का आपस में ऐसा सम्पर्क है कि ये दोनों एक दूसरे से जुड़े हुए हैं तो अगर एक नष्ट होती है तो हमारी शास्त्रीय कला भी नष्ट हो जाएगी।

गुरुजी : वो तो हो जाएगी। शास्त्रीय कला नष्ट हो जाएगी क्योंकि अब क्या बचा है। कला में क्या बच गया है। एक तरफ क्या है कि आज कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक कोई भी व्यक्ति अपने गाँव और घर में रहकर जी नहीं पा रहा है। हर एक को जीने के लिए बाहर निकलना पड़ रहा है। इस तरह से सारा का सारा समाज संचार वृत्ति वाला तो हो गया है और संचार वृत्ति वाले समाज की कोई सभ्यता, कोई संस्कृति, कोई परम्परा नहीं रहती है, इनको जरूरत नहीं रहती है। ये तो सारी नैसर्गिक रूप से जीने वाले समाज की जरूरत है वो समाज ही अगर बिखर जाय तो उनका कुछ नहीं बचता है। खत्म हो जायेगा। अब से सारा समाज एकदम से संचार वृत्ति वाला हो गया। जहाँ कोई कहीं भी जा करके मर मर करके अपना घर बना रहा है। उसकी संतान किस देश को भाग जाएगी ये पता ही नही चल रहा है। कहाँ जाके जिए पता ही नहीं चल रहा है। ऐसे समाज में ये सारी चीजें बचाना बहुत मुश्किल होता है। शास्त्रीय कलाओं का हमारे घर के आर्किटेक्चर से सीधा सम्बन्ध होता है। पूरा घरों का डिजाइन बदलते ही सब कुछ खत्म हो गया। हमारे पास में घर का डिजाइन बदला है, वेश–भूषा का डिजाइन बदला है। ये सारा डिजाइन बदलते ही बहुत कुछ बदल गया। हमारे पास में और संगीत का सीधे से घरों के डिजाइन के साथ सम्बन्ध था, रिश्ता होता है। वो डिजाइन खत्म हुआ तो ये खत्म हो जाएगा। अब ऐसा है, कहीं न कहीं अब इनको रिकार्ड करके डाक्यूमेंटेशन करके ही रखना होगा। ऐसा लग रहा है ये था या ऐसे बचा सकते हैं या सारा का सारा हिन्दुस्तान कभी कहीं न कहीं थोड़ा सा म्यूजियम बन जाएगा। उसको ऐसे

रखा जाएगा कि ये ऐसे जीते थे। पर कलाओं को कैसे बचाएं ये समझ में नहीं आ रहा है। समाज संचार वृत्ति वाला होता है तो बड़ी गड़बड़ हो जाती है। ऐसा ना। उसको जरुरत भी नहीं होती है सारी चीजों की।

प्रश्न : गुरूदेव को सादर प्रणाम, मेरे मन में सवाल यह उठ रहा है कि एक ऐसी सुंदर सामाजिक व्यवस्था की संरचना करने के बाद भी कुछ मुट्ठी भर चाहे वो बाहरी रहे हो चाहे अंदर के लोग रहे हों। उन्होंने इस सामाजिक संरचना को पूरी तरह से नष्ट–भ्रष्ट कर दिया, ये बात गले से नहीं उतरती कि अगर हमारी सामाजिक संरचना दोष रहित नहीं थी। इतनी मजबूत थी कि जहां प्रत्येक व्यक्ति का जीवन सुरक्षित था। तो फिर ये नष्ट कहां से हुई, ताकि हम आगे जो संरचना बनाने की कोशिश कर रहे हैं, उस खतरे से सावधान हो सकें और समाज को बचा सकें। मेरा आपसे यही निवेदन है कि वो दोष कौन सा था जिसके कारण हमारी इतनी सुन्दर व्यवस्था को कुछ मुट्ठीभर लोगों ने लाकर तोड़ दी।

गुरुजी : ये तो प्रश्न उठता है बार–बार, बहुत साल हो गए हैं, इतना सुंदर था तो खतम क्यों हो गया। क्या होता है कि कभी भी बड़े–बड़े परिवर्तन काल में या लड़ाइयों के काल में वो हार जाता है जो सभ्य होता है। तो हार ही जाएगा, सभ्य समाज, उसको कल्पना नहीं होती है, ऐसा कोई कर सकता है। हुआ ये कि मुगलों के आने के बाद समाज में कुछ परिवर्तन हुआ है। व्यवस्था नहीं टूटी। सभी व्यवस्थाएँ अपने आप चलती रहीं। अंग्रेज लोग आने के बाद वो सीधे से यहां की मार्केट की पद्धितियों को समझें और व्यापार को नाश करना चालू कर दिए। ये हैं, पर वो फिर नीयत बनी ये कि इतनी सुन्दर व्यवस्था को तोड़ने की कल्पना किए मगर वो लोग कहीं भी कमजोर बात नहीं सोचे कैसे तोड़ पाएंगे। वो तोड़ना चालू कर दिए और जब उसको खड़े करने या चालू करने की बात आती है तो फिर यह सोचा जाता है कि इस काल में उस व्यवस्था को कैसे खड़ा करेंगे। असंभव है, है ना। मगर तोड़ने वाले लोग तो इस तरह की कमजोर बात नहीं सोचते थे। वो तोड़ना चालू करें धीरे–धीरे टूटना चालू होगा। भई एक व्यवस्था एक तंबू के समान थी ना। एक तंबू में चार खंभे होते हैं। एक–एक खम्भे के चार–चार खम्भे होते हैं, फिर आगे जा के खूंटी - छोटी–छोटी खूंटियां हैं। एक खूंटी को उखाड़ेगा तो तम्बू ढह जाएगा। यहां की खूंटी, वहां की खूंटी उखाड़ने लगे। धीरे–धीरे सारी खूंटियां उखड़ गई, तम्बू ढह गया, खत्म हो गया। अब हमारे लोग खूंटी गड़ने पश्चात तम्बू खड़ा करने के बिना ही खम्बे को पकड़के खड़ा रहते थे। वो यहां खड़ा करते इधर से हवा का झोंका आता वो उधर गिर जाता, उधर से आता, इधर गिर जाता। खड़ा नहीं हो पा

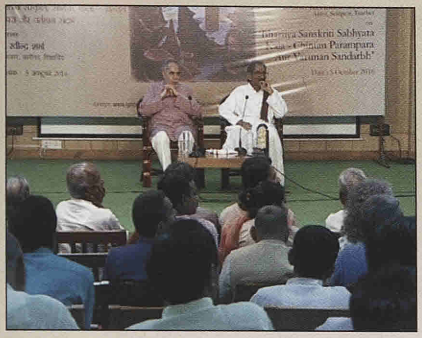

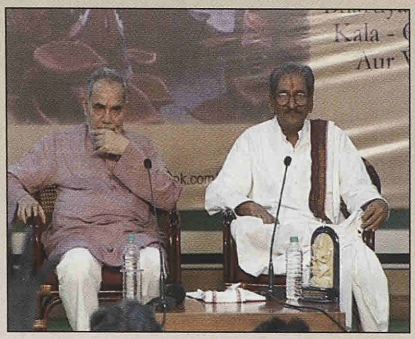

रहा है। दूर–दूर खूंटियां गाड़ने लगेंगे तो शायद खड़ा हो जाए। वो तो समझना पड़ेगा। कि क्या चीज खतम हुई, कैसे खतम हुई, कैसे रोजगार खतम हुआ है।

प्रश्नः एक तो जनेउ वाली बात पर आप थोड़ा सा प्रकाश डाल दीजिए क्योंकि वो बात ऐसी लगती है कि शायद जनेउ जो था वो कर्तव्य के आधार पर, एक तो कहते हैं ना एक तो संविधान हमारे सामने रखा है और दूसरा हमारे पेट के अंदर रखा है। यानी कर्तव्य हमारे अंदर से था। तो उसपे प्रकाश डालिए, धन्यवाद!

गुरुजी : जनेउ वाली बात ऐसी है। अब मैं तो बहुत तरह की कारीगरी करता हूँ, काम करता हूँ। मेरा कुछ सोचना अलग है, पता नहीं। मेरा देखना सोचना अलग है, मैं तो बहुत तरह के काम करता हूँ। तो ये देखता हूँ कि कब जनेउ को पहनना चाहिए, कब जनेउ को उतारना चाहिए। जब मैं शिल्पकला का काम करता हूँ, देवी–देवताओं की प्रतिमाएं बनाता हूँ तो खूब अच्छी जनेउ पहन के बैठता हूँ। जब कुम्हारी का काम करता हूँ तो जनेउ निकालना पड़ता है। है ना। मुझे लगता है कि जो समाज बैठ के काम करने वाला था और समाज खड़े होके काम करने वाला था। बैठ के जो समाज काम करता था उसको जनेउ था और खड़े होकर काम करने वाला समाज था उनका जनेउ नहीं था क्योंकि वो एक फर्क था - ये बैठकर करने वाला है और ये खड़े होकर करने वाला था। जुलाहा बैठकर काम करने वाला है, सुनार बैठकर काम करने वाला और फिर बढ़ई भी बैठकर काम करने वाला है। ये लोग बैठकर काम करने वाले हैं, क्योंकि अगर खड़े रह के काम करने वाले के गले में जनेउ लगा होगा तो करेगा। लोग नंगे बदन रहते थे। धोती बांधते थे उत्तरीय रखते थे। काम के समय उत्तरीय निकाल देते थे। अब वो जनेउ है, उसे कहां बांध–बांधकर रखेंगे। वो तो मिट्टी में फंसेगा, काम झुक के करने में तो उसको बड़ी दिक्कत आती है। मरने की नौबत आ जाती है। भई ये एक

तरह का फर्क था। बैठ के काम करने वाले के अगर गले में जनेउ है तो मरेगा। आगे झुक जाता था, आदमी तो जनेउ उसके काम के आड़ में आता था। सुनार अगर ज्यादा झुक जाता तो जनेउ उसके आड़ में वो फिर सीधा हो जाता था। जुलाहा अगर ज्यादा झुक गया तो उसका धागा से धागा मिल जाते और फिर सीधा होता था। तो कई ढंग से काम आता है, एकतरह से नहीं। बाकी उसके पीछे बहुत बड़ी फिलॉसफी रही ।

प्रश्न : एक तो मैं आपके भाषण को सुनकर बहुत प्रभावित हुआ, कितनी गहराई से, आपने उजागर किया समाज को, भारतीय समाज को। मैं एक वैज्ञानिक हूँ, एक ये प्रश्न पूछना चाहता हूँ। एक दुविधा रहती है मन में, जैसे मैंने देखे जापानी खिलौने, वहां पर कुम्हार ऐसा ही है जैसा कि हमारे यहां का है लेकिन उसके खिलौने बहुत सुन्दर है उसका नाप तौल बहुत अच्छा है, हमारे यहां नहीं है ऐसा। अब प्रश्न यह उठ रहा है कि ये सारी कलाएं जो नष्ट हो गई थीं, जिनको कि हम अब ढूँढकर के ला रहे हैं और बहुत बड़ा काम कर रहे हैं। आप गुरू बैठे हैं यहां पर तो बहुत ही आनन्द आ रहा है। प्रश्न ये है कि क्यों नई तकनीक, कम्प्यूटर से नई चीजों को जोड़ना चाहेंगे या बिल्कुल वैसे अनूठा रखना चाहेंगे। अनछुआ जैसा पहले था। शायद यह बहुत बड़ा चैलेंज होगा। अगर हम यह नहीं करेंगे तो हम पिछड़ जायेंगे क्योंकि परिवर्तन बहुत तेजी से आ रहा है। मेरा निवेदन है इसपे आप कुछ बताएं तो बड़ी कृपा होगी।

गुरुजी : हमारी जो टेक्नालॉजी रही है पूरी की पूरी; जो साधन रहे हैं, वो अद्वैत सिद्धांत पे खड़े थे, द्वैत पर नहीं। अद्वैत में मैं और मेरे औजार जब मिलेंगे तो एक सृष्टि होगी वो था। वह औजार–हथियारों से काम करता था। दोनों मिलकर जब काम करते थे तो उसके औजार निखार लाते थे पैदा करते थे, इसको बनाते थे। एक कारीगर को संयमित बनाने में नियंत्रण वाला नहीं अपने आप में संयमित होने वाला बना डालते और वो बहुत सारी चीजें उसके अन्दर थीं। मैं कई बार लोगों को बताता हूँ अब जैसे हम लोग जब घूमते फिरते जानकारी लिये उस जानकारी के साथ ये एक समझ बना लिए, लोगों से एक समझ बनी है। तो जब ये समझ बनी लोगों के प्रति हमारे भीतर ऋण का भाव हमारे अंदर आ गया। अब आजकल के लड़के बहुत सारी जानकारी ये जादू के पिटारे से निकालते हैं। फटाक से जादू का पिटारा खोले, उसमें से निकाल लिए हमारे से बहुत जानकारी। ये जादू का पिटारा जानकारी तो बहुत देता है पर समझ तो नहीं बनाता। दूसरा जैसे हमारा इन सब लोगों के प्रति ऋण का भाव रहता है, इसके प्रति ऋण का भाव जरा भी नहीं रहता। ऋण का भाव ही खतम, बहुत बड़ी गड़बड़ की बात है ये। पर जहां तक है साधन हम कोशिश करते रहे हैं कि ये करेंट और पेट्रोल हमारे

कारीगरों के हाथों में आ जाता तो वो कैसे उसको इस्तेमाल करते, वो क्योंकि हम लोग देखते हैं, कारीगर - कलाकार लोग थे। करण्ट पेट्रोल उनके हाथ में अगर आ जाता तो वे कैसे सृष्टि करते। कैसे टैक्नॉलॉजी वो बना लेते, वो अलग था, पूरा का पूरा शायद वो अलग हो जाता तो कुछ सुविधा तो जरूर पैदा कर लेते। मगर अपने हिसाब से कितनी सुविधा चाहिए उतनी पैदा करते हैं, कितनी सुविधा चाहिए। कई बार हम देखते हैं रंग बनाना है बहुत मर मर के रंग बनाना पड़ता था, रंग पीसना है, क्या–क्या करना है, फिर वो बनाने वाला आकर नाखून में लगाके देखता था फिर और पीसो ये सब पिसाई करना–कराना है, सब था उसमें। कई बार लगता है कि उसके लिए कारीगर उनके हाथ आता तो वो शायद कुछ साधन बना लाते। ऐसा बनाते जो उनके काम में नुकसान न पैदा करे। उनके मार्केट न खतम कर डाले। इतनी टैक्नॉलॉजी वो शायद इतने साधन वो तैयार कर लाते, वैसे होना चाहिए। हम लोग अभी भी बोलते हैं कि कारीगरों को देखो और उनके लिए जितना साधन चाहिए उतना साधन उसको बना दो ताकि उसके काम में सुविधा हो जाए। इतना तो करना ही पड़ेगा ना। इन सारी चीजों के बारे में हमारी सोच अलग रही है। खिलौनों के बारे में, सारी चीजों के बारे में अलग रही है। हमारे खिलौने अलग थे, हमारे खेलने के खेल पूरे अलग खेल थे सभी। बचपन के जो खेल होते थे अलग किस्म के खेल थे। बच्चे जो छोटे–छोटे खेल खेलते थे, बच्चों के अन्दर सहज सामाजिक शिक्षण पैदा होना है। उसके लिए कुछ खेल बने हुए थे - ऐसे खेल बच्चों के थे। उसके बाद जैसे बड़े होते गए उसमें कुछ एकाग्रचित होना है, लक्ष्य वेधना है। लक्ष्य और एकाग्रचित होने के बहुत से खेल थे। प्रौढ़ अवस्था के लोगों के लिए होते थे। गृहस्थियों के लिए होते थे। वो ये था कि भाग्य से जो हमें मिला है उसका सही उपयोग करना कैसे आना है। फिर कुछ ऐसे थे पासा फैंक कर खेले जाते थे, कौड़ी फैंकने जो भाग्य से तुमको मिला है उसका सही उपयोग करना है तुम लोगों को। फिर उसके बाद महिलाओं के लड़कियों के बहुत सारे खेल ऐसे थे, कहीं कोई चीज छुपा देता क्योंकि इनका लक्ष्य बनाना है। कोई भी चीज ढूंढने का। इनकी रसोई में हजारों चीजें रहती हैं। एक की रसोई में दूसरी कोई बाहर की महिला आकर निकाल सकती है, पुरूष

नहीं निकाल सकता है। ढूंढने का लक्ष्य वो शायद नहीं कर सकता है। खेलों के दौरान ये सभी लक्षण पैदा करना रहा है। हमारे पास में तो ये सारी चीजों को टैक्नॉलॉजी इनमें कितना उपयोग में आती है। साधन तो साधन होते हैं। पर एक चीज है हमारे पास में बात करना जो पूरा रहा है। अपने यहाँ विज्ञान आधारित बात नहीं हुई। आज सारे समाज की बात करने का आधार विज्ञान है। यहां की युवा पीढ़ी का बात करने का आधार है वो विज्ञान है। हमारे पास में विज्ञान बात करने का आधार कभी नहीं रहा। हमारे बात करने का आधार था - व्याकरण या गुण। हमारे पास में कोई भी बात व्याकरण सम्मत होती थी या गुण आधारित होती थी। विज्ञान सम्मत नहीं होती थी, विज्ञान आधारित नहीं क्योंकि लोग जानते थे कि विज्ञान अधूरा है। जो चीज अधूरी है वो बात का आधार नहीं हो सकती है। विज्ञान में आज एक सिद्धांत है, कल को कुछ और हो सकता है। इसलिए हमारी बात करने का आधार हमेशा व्याकरण रहा है। तो उस चीज को समझना होगा, व्याकरण और विज्ञान में क्या–क्या हो रहा है और ये सब कुछ हो रहा है और हो सकता है। ऐसी टैक्नॉलॉजी से तो वैर नहीं है। पर कितनी होना चाहिए उसको लेकर गड़बड़ हो जाती है। जरा ना बहुत कोशिश करते हैं, छोटे पैमाने पे बहुत कुछ हो जाए कारीगरों के काम में आए ऐसे।

प्रश्न : गांव में अभी भी छुआछूत और झाड़फूंक जैसी चीजें बहुत हैं, अभी भी लोग ऐसे हैं जिनकी महिला अगर गर्भवती है तो वो सीधे डॉक्टर के पास ना ले जाके झाड़फूंक वाले के पास जाती हैं। ये सब चीजें बहुत हैं तो इन सब चीजों के बारे में आप कैसे सोचते हैं और इसको खत्म करने के लिए आगे कुछ प्रयास कर सकते हैं, बस ये मेरा सवाल है आपसे।

गुरुजी : अब ये सवाल छुआछूत का विशेष है। ये तो कभी बैठेंगे तो आराम से समझने वाली बातें हैं इसको छुआछूत में डाल दिया तो क्या था और वास्तव में क्या था। बाकी रहा झाड़फूंक वाला वो यही वो तो ठीक है गड़बड़ सी है, वो लोगों को चाहिए क्योंकि अब गांव में वैद्य तो रहे नहीं। वैद्य नहीं रह गये हैं। ये लोगों की मजबूरी है। जरा कहीं जाकर अपना करवा लेना जाकर कुछ करवा लेना वो है। समय लगेगा उस तरह के वैद्य उस तरह की सारी चीजें होती हैं। फिर ठीक वो एक खड़ा तो करना तो पड़ेगा। लग रहा है कि चलेगा थोड़ा समय तक चलेगा। या तो ये व्यवस्था हावी हो जाए तो फिर शायद खत्म हो या फिर वो अपने हिसाब की अपनी व्यवस्था कराये, फिर सब खत्म हो जाए। तो वो हो सकता है बड़े आराम से, हमारे वो सब अलग ढंग थे। वहां संतान पैदा करने के बहुत तरीके, बहुत बता सकता हूँ मैं, ऐसे कैसे होता

था। एक शिक्षा–मूर्ति मेरे पास में आया। उसके पास में एक छोटा सा एक खेल था, खिलौना - कडों में कड़ा फसाना है। ये खेल थे। तो बता रहा हूँ, "भई, ये दे दो क्या बात है।" तो ये क्या–क्या काम में लेते हैं तो वह बोला, "प्रसव में दिक्कत आती है किसी महिला को तो हम ये खेल उसको दिखाते हैं तो उसका प्रसव आसानी से हो जाता है।" हां, बोले खेल दिखाते हैं, वो हमारा ध्यान तो दूसरे की तरफ नहीं रहता है उसका ध्यान भी इसपे कर लेते हैं, इतना ही। प्रसव हो जाता है आसानी से। बच्चा पैदा करने में दिक्कत आ रही है तो हमारे यहाँ वाद्य बजाए जाते थे। वाद्य नाद से भी बच्चा हो जाता था। ये सब प्रक्रिया उस समय की रही है। उसका वैज्ञानिक आधार ढूंढना होगा लोगों को कि कैसे क्या होता है। पता नहीं है वो बहुत सारे ढंग रहते हैं। हर जाति के ढंग रहते हैं। हर जाति के ढंग की अपनी मात्रा रही है। बच्चा सभी जाति के होता है। जच्चा की मात्रा सभी जाति में अलग थी। मैंने एक पंसारी से पूछा ये जच्चा के लिए जो मात्राएं दी जाती हैं हमारे उसके लिए तुम जाति क्यों पूछते हो। हां, वो बोला पूछना पड़ता है। मैंने पूछा क्यों? वो बोला हर जाति की अलग मात्राएं होती है, क्योंकि कुम्हारों की मात्राएं अलग हैं, ब्राह्मणों की मात्रा अलग है, बनिये की मात्रा अलग है, जुलाहों की मात्रा अलग, गोंडों की अलग है, लंबारों की अलग है, सबकी अलग है भाई, यह क्या है। इन सब के काम अलग हैं खाना–पीना के टाइम अलग है सब कुछ अलग है उस हिसाब से उनकी मात्राएं अलग है। एक जुलाहा सारा दिन में कितना समय खड़ा रहता है बहुत कम एक धनगर भेड़ बकरी चलाने वाला पूरा दिन में कितने समय बैठता है बहुत कम तो इनका तो सब कुछ अलग अलग है उस हिसाब से इन की मात्राएं वैद्य लोग तैयार किए। तो वह कभी–कभी लगता है कि वह एक बहुत वैज्ञानिक पद्धति रही है शायद तो उसको समझना होगा क्या होता था कैसे होता था तो ठीक है।

प्रश्न 1 : गुरू जी आपको कई बार सुना और सुनने में अच्छा भी लगता है पर सवाल यह है कि एक तरफ आप सारे सकारात्मक पक्ष रखते हो दूसरी तरफ इस देश में ऐसे भी लोग हैं जो सारे नकारात्मक पक्ष देखते

हैं क्योंकि मैं उन सबके बीच घूमता हूँ। यह मेरा काम भी है। मैं यह कह रहा हूँ कि तीसरा पक्ष यह है जो वर्तमान की व्यवस्थाएं हैं और वह जिस तरह आदमी को तोड़ रही हैं अपराधी बना रही हैं तोड़ रही है और अपराधी बना रही है इसके बारे में युवाओं को, इसके बारे में आने वाली पीढ़ी को बिना जागृत करें क्या यह आपके सकारात्मक पक्ष टिक सकते हैं ? क्या पहले जो यह व्यवस्थाएं आज आदमी को अपराधी बना रही हैं, आज आदमी को बुरी तरह अपराधी बना रही हैं और आदमी को तोड़ रही हैं। उसके बारे में भी इन पक्षों को रखते हुए आप उनके बारे में उसी जोर से आपको बात रखनी चाहिए ये मेरा सुझाव है। और फिर अगली बात ये है कि इस तरह की आप गांव की कल्पना कर रहे है मेरे जैसा व्यक्ति भी उस में आके कहीं फिट हो सकता है इस तरह का गांव कहीं एक दो जगह बनाइए कि जो कुछ मॉडल भी खड़े हो साथ–साथ में है ना तभी जाके कुछ विश्वास बनेगा नहीं तो लगता है कि कथा है, अच्छा–अच्छा लगता है सुनने में पर इस से कुछ होना जाना नहीं है।

प्रश्न 2 : एक बात सिर्फ इतनी जानना चाहता हूँ कि हम चिंता क्यों करें इसकी कि ये दोबारा से फिर इसको रिस्टोर कर लें। शायद समाज अपने आप फिर से खड़ा हो फिर से वो व्यवस्थाएं बुने बनाये। हम लगातार इनकी चिंता क्यों करे। आपने बीज इकट्ठा करने की जो बात करी वो बात मुझे बहुत अच्छी लगी कि पुराने से हम क्या बचा सकते हैं उसे आगे क्या इस्तेमाल करेंगे लेकिन ये बचाने की चिंता क्यों करे हमेशा?

गुरुजी : बचाना इसलिए है कहीं अब आज की पूरी व्यवस्था आज का पूरा जितना भी सब कुछ है सब एक ही ऊर्जा पे आधारित है। आज एक ही ऊर्जा पे ये सभ्यता आधारित है। यही ऊर्जा उसी सभ्यता को खत्म कर डालेगी। हमारी यही है कोशिश जरा कि उर्जा अगर फटाक से खत्म हो जाए तो फिर यह ना हो जाए कि हम पत्थर से पत्थर मारकर आग पैदा वाले हो जाएं। है ना। कम से कम यह जानकारी है रखी रहे तो कुछ समय उसका उपयोग हो सकता है ना, आ सकता कि ऐसा भी हो सकता है कि ऐसे भी कर ले सकते, है ना। नहीं तो फिर एकदम आदिमानव क्यों ना बन जाना है भई। वो नहीं होने के लिए कुछ तो रखना पड़ेगा नहीं तो हो सकता है करंट और पेट्रोल गायब होते ही आज किसी को कुछ तो करना नहीं आता है अपने हाथ से; फिर से पत्थर से पत्थर मारकर आग पैदा करने वाले बन जाएँ तो यह ऐसी गति तो नहीं आना चाहिए ना। ठीक है अगर यह खत्म होगा अगर कुछ है तो उससे यह कुछ हो सकता है तो कर लेना चाहिए। करने वाले तो करेंगे ना चिंता व्यवस्था की; मगर मेरा तो यह है कि मैं एक अतीत सुनाता हूं

उतना ही मैं लोगों की एक स्मृति जागरण को कर रहा हूं कुछ होगा तो होगा नहीं होगा तो नहीं भी होगा क्या है उसमें है ना ठीक है चलिए अब। बस करते हैं अब–हैं।

राय साहब : सवाल कई रह गए होंगे और रहने भी चाहिएं मुझे लगता है ज्यादा सवाल अभी और पूछे जा सकते हैं परंतु मेरा यह कहना है की जिज्ञासा बनी रहनी चाहिए सवाल बने रहने चाहिए इसलिए हम यहां विराम दे रहे हैं और आपको निमंत्रण दे रहे हैं कि जब आप गुरुजी को सुनना चाहें तो हम इनको इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केंद्र में निमंत्रित करेंगे। हम बड़ी संख्या में व्यवस्था करेंगे और दिन भर का भी आयोजन कर सकते हैं। आज गुरू जी ने जो कहा मेरा मानना है कि दुनिया में दो ही तरह की विचारधाराएं हैं –– या तो जानना है या तो कर्म करना है और उसी को हमारे शास्त्रों में सांख्य और योग कहा गया है। सांख्य वही है कि जान लेना काफी है। गुरुजी जो बात बता रहे हैं वह इनके शब्दों में कहें तो एक स्मृति जगा रहे हैं और स्मृति जगाने का मतलब होता है कि हम जब आत्म–विस्मरण के दौर से गुजरते हैं तो वह बड़ा भयानक दौर होता है। आप मुझसे सहमत हों या नहीं, मैं ये मानता हूँ कि हम लोग लंबे समय से, और उस लंबे समय को कोई सालों में नहीं बांटा जा सकता, लेकिन लंबे समय से वह हो सकता है कि 1000 साल से हम आत्म– विस्मरण के दौर से गुजर रहे हैं। हम भूल ही गए हैं कि हम थे कौन, हम हैं कौन? उसका एक पक्ष हमें रवीन्द्र शर्मा जी यानि गुरुजी बता रहे हैं। और यहां आपने इतनी रुचि दिखाई में उसके लिए आपको धन्यवाद देता हूं और मेरा निमंत्रण आपके पास रहेगा; आप जब कहेंगे इनको (गुरू जी को) बुलाया जाएगा और आज का जो छूट गया है या इससे आगे की बात वह हम लोग करेंगे मैं यह भी कहूंगा कि जिन लोगों ने कहा कि वह केवल यही बात बता रहे हैं जो दरअसल आज के यथार्थ से उसका कोई मेल नहीं है खाता। इस तरह की बात जिन लोगों ने भी कही है मैं पूरी तरह से उन लोगों से असहमत हूं क्योंकि मैं यह मानता हूं कि गुरुजी जो यह बात

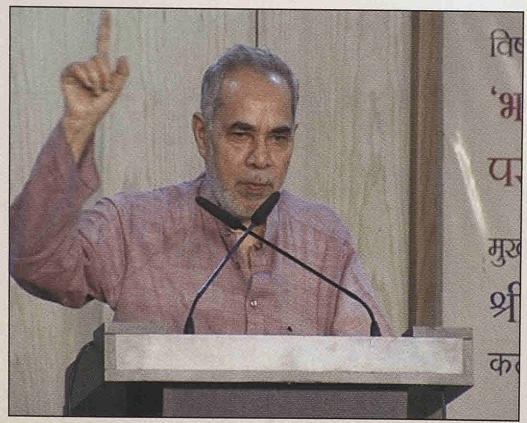

बता रहे हैं उसका हमारे यथार्थ से गहरा संबंध है और इस बात से उसका संबंध है कि दरअसल जो बात हमको जानना चाहिए वह बात हम अभी तक जान नहीं पाए हैं। वे बता रहे हैं चाहे वह समाज–व्यवस्था हो, चाहे पर्यावरण हो, चाहे वह शिक्षा हो तो कुल मिलाकर के इनका जो यह उदाहरण है कि तंबू की जो खूँटियां हैं वह काट दी गई हैं और हम कमरे पर तंबू को बनाए रखना चाहते हैं। और हम खूंटियों पर ध्यान देंगे तो हो सकता है हम फिर से उस कायनात को पा सकेंगे जिसका नाम भारत है इसी के साथ मैं अपनी बात पूरी करता हूं।

जीवन वृत्त

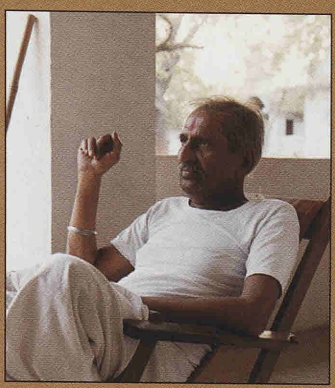

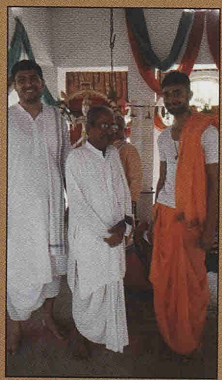

श्रद्धांजलि रविंद्र शर्मा उपाख्य गुरुजी

एक अनुष्ठान संपन्न करते गुरुजी

कथा, आदिलाबाद क्षेत्र के 20 किलोमीटर के दायरे में घूमकर देखी गई व्यवस्था की कहानी है, जिसमें हर सुनने वाले को अपने गांव की कहानी नजर आती है। यह उनकी विशिष्ट दृष्टि ही थी कि जिस आदिलाबाद को नक्सलवाद के गढ़ के रूप में जाना जाता था, उसे उन्होंने सांस्कृतिक-सामाजिक व्यवस्था से समृद्ध क्षेत्र के रूप में देखा-पहचाना।

उनकी यह विशिष्ट दृष्टि एक छोटी-सी घटना से निर्मित हुई। वे एक दिन किसी के अंतिम संस्कार में गए हुए थे। अचानक उन्हें ध्यान आया कि यहां तो पूरा गांव, हर जाति के लोग मिलकर उसका संस्कार कर रहे हैं। इस बात पर ध्यान जाते ही उन्होंने अन्य संस्कारों की ओर नजर दौड़ाई। सहज ही दिखाई दिया कि भारतीय समाज में एक मानव के जीवन में होने वाले सभी संस्कार ही कारीगरों का बाजार है। दूसरा, बचपन से लेकर मृत्यु तक कारीगरों से परिचय का काम भी संस्कारों के माध्यम से होता है। कभी, किसी संस्कार में कारीगर खुद अपना सहयोग लेकर खड़ा रहता है तो कभी किसी संस्कार में कारीगर के यहां से जाकर चीजों को लाना पड़ता है। भारतीय समाज की इस सुंदर व्यवस्था का आभास होते ही गुरुजी आदिलाबाद के 20 किलोमीटर के दायरे में घूमकर समाज व्यवस्था, जातियों की व्यवस्था, कारीगरी व्यवस्था और उनके आपसी संबंध की जानकारियां इकट्ठा करने लगे। उन्होंने इन्हीं जानकारियों में से व्यवस्थाओं को समझने के सूत्र निकाले।

सभ्यता, संस्कृति, अर्थव्यवस्था, समाज, सामाजिकता, ग्राम ऐसे अनेक शब्द हैं जिनसे सामान्य से सामान्य भारतवासी परिचित हैं। वे अपने दैनंदिन जीवन में अनेक बार इनका उच्चारण करते हैं। लेकिन सामान्य तो दूर, क्या विशिष्ट जन भी इन शब्दों की सटीक व्याख्या करने की स्थिति में होते हैं? यहीं गुरुजी बड़ी ही सहजता से इनके बारे में समझाते। यही नहीं, भारतीय समाज व्यवस्था की अनेक उलझी हुई गुत्थियों को वे बड़ी आसानी से सुलझाते थे, इसलिए उन्हें भारतीय समाज व्यवस्था का सटीक व्याख्याकार कहा गया।

गांव किसे कहेंगे? एक गांव की परिभाषा देते हुए वे अनेक सूत्र बताते। गांव के लिए सभी भारतीय भाषाओं में अलग शब्द हैं। इसे ग्राम कहते हैं, पंजाब में पिंड बोलते हैं, देहात भी कहते हैं। इन सबका अर्थ है शरीर। अर्थात् जिस तरह से एक शरीर व्यवस्थित रहता है, वैसे ही हमारे गांव भी व्यवस्थित हैं। गांव यानी वह स्थान, जहां व्यक्ति, परिवार और समूह के आधार (रोजगार) की सुरक्षा हो और उनके मान की व्यवस्था हो, उनमें गौरव का भाव हो। एक सूत्र दिया, गांव समृद्ध होता है तो हर व्यक्ति संपन्न होता है लेकिन जब व्यक्ति संपन्न होता है तो गांव कंगाल होते हैं।

गुरुजी किसी विचारधारा या दल से बंधे नहीं थे। वे दृष्टि और दर्शन वाले एक साधारण इनसान थे। पांव में चमड़े की चप्पल, सफेद सूती धोती-कुर्ता, कंधे पर पटका, माथे पर रोली का लंबा तिलक और आंखों पर चश्मा। ठीक वैसे ही जैसे हमारे गांव का कोई पुरोहित घरों में जाकर कथा सुनाता है। गुरुजी भी भारत की कथा सुनाते थे।

भारतीय समाज व्यवस्था के वैभव का वर्णन वे इस तरह से करते कि हमारे मानस में हमारी व्यवस्था का एक सुंदर चित्र बनता और सुनने वाले स्मृतियों में खो जाते। वे स्मृति जागरण की कथा सुनाकर चले गए। उनका जाना बुरी तरह अखर गया। कुछ दिन और रहते तो शायद कुछ और सूत्र पकड़ में आते। गुरुजी गए पर वह सब कर गए जो एक साधारण भारतीय को करना चाहिए।

(लेखक वरिष्ठ पत्रकार और वर्ष 2009 से ही 'गुरुजी' के संपर्क-सान्निध्य में भारतीय समाज व्यवस्था के अध्येता रहे हैं।)

श्रद्धांजलि रविंद्र शर्मा उपाख्य गुरुजी

सो गए, प्यार से जगाने वाले

गुरुजी के नाम से प्रसिद्ध रविंद्र शर्मा ने गांव और ग्रामीणों की भलाई के लिए कभी खुद की परवाह नहीं की। वे मानते थे कि गांव समृद्ध होता है तो वहां रहने वाले लोग भी समृद्ध होते हैं, पर आजकल गांव को छोड़ केवल व्यक्ति की समृद्धि पर जोर है

■ रूपेश पांडे

"**प्रलय** आने वाला था। कुछ विद्वान जल्दी-जल्दी सारी चीजों के बीज इकट्ठे कर नाव में चढ़ दूर निकल गए। प्रलय आया, धरती डूब गई। प्रलय शांत हुआ तो विद्वान पुनः आए और उन्हीं बीजों से एक नई सृष्टि का निर्माण किया।" पुराणों में लिखी प्रलय की यह कहानी अक्सर कथाओं में सुनी जाती है नैमिषारण्य की कथा के नाम से। पर जब रविंद्र शर्मा, जिन्हें सामान्यतः गुरुजी के नाम से पुकारा जाता है, यह कहानी सुनाकर उसे आज की व्यवस्था से जोड़ते तो सुनने वालों को एक नई दृष्टि मिलती। वे इस पौराणिक कथा को बड़ी सहजता से आज की व्यवस्था से जोड़ते हुए बताते, "आज भी एक प्रलय आया हुआ है। उसे कोई भी नाम दे दें, आधुनिकता का प्रलय, विकास का प्रलय या पश्चिम का प्रलय, इस प्रलय में कुछ बचेगा नहीं। इसलिए जल्दी-जल्दी सारी सभ्यता के बीजों को इकट्ठे कर लेने की जरूरत है, ताकि आने वाली पीढ़ी प्रलय के बाद जब नई सृष्टि रचने बैठे तो उसे मदद मिले।" गुरुजी की इस कहानी को देशभर में व्यवस्था परिवर्तन के काम में लगे हजारों लोगों ने सुना। जिन्होंने सुना उनमें से अनेक इसी दृष्टि से अपने क्षेत्र में काम कर रहे हैं।

5 सितंबर, 1952 को तेलंगाना के आदिलाबाद में जन्मे रविंद्र शर्मा का 29 अप्रैल को निधन हो गया। वे मूलतः पंजाबी ब्राह्मण थे। पिछली एक पीढ़ी से उनका परिवार आदिलाबाद में रह रहा है। आजादी के पहले ही उनके पूर्वज पंजाब के किसी गांव से आकर यहां बसे। उनके ताया निजाम के कारिंदे थे। आदिलाबाद में 10वीं तक पढ़ाई के बाद वे उच्च शिक्षा के लिए हैदराबाद गए। वहां जवाहर लाल नेहरू टेक्नोलॉजिकल विश्वविद्यालय से कला स्नातक की उपाधि प्राप्त की। बाद में ललित कला अकादमी, हैदराबाद की छात्रवृत्ति पर बड़ौदा के एम.एस. विश्वविद्यालय से ललित कला में स्नातकोत्तर की उपाधि ली। पढ़ाई के दौरान भी गुरुजी का मन आदिलाबाद में ही रमा रहा। वे आदिलाबाद क्षेत्र की कई शिल्प कलाओं और कारीगरी विधाओं में भी पारंगत होते गए। बड़ौदा में पढ़ाई के दौरान का जीवन बहुत रोचक रहा। एम. एस. विश्वविद्यालय के बारे में कहा जाता है कि चित्रकला के क्षेत्र में आधुनिकता को स्थापित करने का काम यहीं से हुआ, लेकिन ऐसी उच्च पढ़ाई और आधुनिकता के वातावरण का गुरुजी पर रंच मात्र असर नहीं था। वे प्रत्येक शाम अपने सहपाठियों और शिक्षकों को महाभारत की कथा सुनाते। उनका गुरुजी नामकरण किशोरावस्था में ही हो गया था, जब वे आदिलाबाद में अपने अखाड़े में पहलवानों के उस्ताद हुआ करते थे और लाठी भांजना सिखाते थे।

वे कला की आधुनिक पढ़ाई के बाद पेरिस में काम करने के अवसर और बड़ौदा में लेक्चरर की नौकरी के अनुरोधों को ठुकरा कर आदिलाबाद आकर यहीं रम गए। 1979 में उन्होंने कला आश्रम की स्थापना की। उनकी

भारत विद्या प्रयोजना

Tributes

(Compiled from Facebook)

The moment Hindus accepted Hindu-As-A-Religion labeled as Hindu-ism at par with Christianity and Islam, we created a Trojan Horse that would eat away the indigenous culture and civilization of the land. In that lapse of wisdom we failed to see that what masquerades as "Religion" are hidden agenda of political imperialism. And not only it has little to do with Dharma as it's many a times loosely translated to, all the empirical evidence suggests that religion has come to signify Adharma in our times. It is sad that no less than Swami Vivekananda further glorified and sanctified Hinduism as a religion at the 1893 Parliament of World Religions at Chicago in his famous speech. Gandhi was hardly a scholar on Indic tradition even though with his wide influence, his mutilation of Hindu culture and ethos is no less damaging. As I have shared before, I am not sitting in judgement on why he did that. But as Russia has moved beyond Lenin's legacy or China has done with Mao Tse-sung, Hindus need to move beyond the likes of Swami Vivekananda and Gandhi. We must pay them due regards for their valiant contributions but move ahead we must. In this light, I would also like to pay my heartfelt condolences to the bereaved family and followers of Ravindra Sharma Guruji who died yesterday. His contributions to awaken us to the rich and vibrant indigenous culture and civilization of Bharat towers over all these predecessors. He was the leading seer-scientist of our times. It is his inspiration and vision that I carry.

-- Chandra Vikash (Facebook) (April, 30, 2018)

Adilabad will no more be the same, with the passing away of Guruji Ravindra Sharma today! He and his Kalashram were the hubs of intense learning and knowledge sharing about the saundarya drishti, which can be roughly summarized as the deeply meaningful, humane and sensitive; creative and aesthetic; embedded in the traditional rural life of India. Listening and talking to him were always a stunning revelation!

-- Sumanspati (Facebook) (April 29, 2018)

Deeply pained to know about the demise of doyen of rejuvenation of traditional Indian crafts Kalaratna Ravindra Sharma Guruji of Adilabad. I wasn't fortunate enough to have met him in spite of my wanting, but had always great respect.

ICCR joins me in paying Sharaddhanjali.

-- Dr. Vinay Sahasrabuddhe (Facebook) (April 30, 2018)

गुरु जी के जाने के बाद बहुत खालीपन सा है..

दिल बोझिल और मन अशांत।

गुरु जी का जाना भारतीय फलक में एक टिमटिमाते तारे का अस्त होने जैसा है।

पिछली सदी में अगर गांधी जी का नाम लें.. तो इस सदी में गुरु जी रवीन्द्र शर्मा।

आपको गांधीजी द्वारा रचित ग्राम स्वराज पढ़नी चाहिये..

स्वराज के जिन असाधारण सूत्रों का प्रतिपादन बापू जी इस दर्शन में करते हैं उसकी

भारतीय ग्राम्य जीवन में निरन्तर जीवंतता रही है ऐसा कहना – बोलना – करना ही गुरु जी का जीवन संदेश रहा।

मेरा कहने का मतलब... जहां गांधी जी रुकते हैं वहां से गुरुजी कहना सुरु करते हैं। देश के हजारों नौजवानों, सामाजिक एवं राजनैतिक कार्यकर्ताओं तथा बुद्धिजीवियों के गुरु.. श्री रवीन्द्र शर्मा आपका काम सदा हमे ताकत और भारतीय सामाजिक – राजनैतिक – आर्थिक दर्शन की समझ हम सबको सदैव प्रदान करेगा।

अभिनन्दन एवम् अश्रुपूर्ण श्रद्धांजलि गुरुवर।

— **Pradeep Pandey (Facebook) (May 01, 2018)**

रवीन्द्र शर्मा गुरुजी नहीं रहे। उनका जाना मुझे व्यक्तिगत रूप से बहुत खाली कर गया, इतना कि रो भी नहीं पा रहा। 10 साल पहले रजनी बख्शी जी की उम्दा किताब बापू कुटीय में गुरुजी पर एक लंबा आलेख चेन्नई में मेरे दोस्त Rama Subramanian जी की लाइब्रेरी में बैठ कर पढ़ा। अगले दिन सुबह सुबह ही चेन्नई से आदिलाबाद के लिए निकल गया, गुरुजी से मिलने। वो मुझे आश्रम के बाहर खुद लेने आये, सफेद बनियान और सफेद झग धोती में। उनके पास दस दिन रहा, दिन रात उनको सुनता रहा। भारतीय परंपराओं, कारीगरी, कलाओं, सौंदर्य, संगीत, जनमानस, गांव–देहात के रीति–रिवाज और इनसे जुड़ी असंख्य कथाओं का एक गहरा संसार उनके भीतर रहता था। वो वही बोलते जो उन्होंने देखा, सीखा। समाज को देखने–समझने का सऊर क्या होता है, यह उनके बोले गए हर शब्द के साथ हमेशा जुड़ा रहा। मैं गुरुजी के अलावा अगर किसी और से उनकी बराबरी के व्यक्तित्व से अगर मिला हूँ तो वो थे कच्छ के अब्दुला भाई। वो भी हमें दो साल पहले छोड़ कर चले गए। भारतीय मौखिक इतिहास की परंपरा के दो बड़े सूर्य अब अस्त हो चुके हैं। उनकी रोशनी हमारे अंदर हमेशा रहेगी। अभी Pawan Gupta जी से बात करके दिल हल्का कर रहा था। उन्होंने मुझे याद दिलाया कि कैसे गुरुजी बैठक के बीच में उठकर चुपचाप बीड़ी पीने निकल जाते थे। आज सुबह भी वो चुपचाप चले गए, पीछे धुआँ छोड़ गए। हमारी आंखे उस धुंए से हमेशा जलती रहेगी।

— **Gopal Singh (Facebook) (April 29, 2018)**

पिछले साल अनुपम मिश्र को कैंसर ले गया था, इस साल गुरुजी को कैंसर ले गया। हो सकता है आप गुरुजीय को बिल्कुल न जानते हों लेकिन थे वो जानने लायक। भारत और भारतीयता की इतनी साफ समझ कम से कम मैंने किसी और में न देखी। लेकिन रवीन्द्र शर्मा गुरुजी प्रचार प्रेमी नहीं थे। जीवन में संतोष का पूर्ण सुख था इसलिए कोई आ गया तो बात कर लिया, कहीं जाना जरूरी लगा तो जाकर संवाद कर लिया लेकिन भीतर कहीं ये भाव नहीं था कि लोग उन्हें जाने। हां, वो एक बात जरूर चाहते थे कि लोग अपने आप को जाने। अपनी परंपरा को जाने। अपनी व्यवस्था को जाने। हमारी आंखों पर नासमझी की जो पट्टी बांधी गयी है, उसे हटा दे और भारत को भारतीयता को खुली आंखों से देखें। और जिसने भी गुरुजी की बात मानकर पट्टी खोली तो आंखें खुली की खुली रह गयीं। गुरुजी की कही गयी एक बात जो कभी नहीं भूलती वह बताता हूं। कोई पंद्रह साल पहले बनारस में बोलते हुए उन्होंने कहा था कि हमारा काम बीज बचानेवाला काम है। वही हमें करना भी चाहिए। फिर उन्होंने एक कथा सुनाई जो भारत में सब जगह कही सुनी जाती है। उसी कथा के आधार पर हॉलीवुड की फिल्म बनी थी 2012; कथा कुछ ऐसी है कि जब धरती पर प्रलय आयी तब कुछ पंडित जितने ग्रंथ मिला उसे लेकर एक छोटी सी नौका में बैठकर वहां से दूर चले गये। जब प्रलय का पानी उतरा तो फिर लौटे और उन्होंने नयी सृष्टि की रचना की। फिर उन्होंने कहा था, "इस समय भी एक प्रलय ही आई हुई है। सभ्यता, संस्कृति, समाज कुछ बचेगा नहीं। जितना बचा सकते हो, बचा लो क्योंकि जिस दिन प्रलय का यह पानी उतरेगा उस दिन पुनर्निर्माण की मांग होगी, उस वक्त यही बचाये गये बीज फिर से सृष्टि की रचना करेंगे।" गुरुजी जो बीज बचा गये हैं, वह हमारे मन मानस में बचा रहे, यही प्रभु से प्रार्थना।

— **Sanjay Tiwari (Facebook) (April 29, 2018)**

दुनिया को भारत की नजर से देखते हुए भारत को भारत के नजरिये से देखने समझने वाले लोग कम ही हैं। उन्ही में धर्मपाल जी, अनुपम मिश्र जी आदि कुछ नाम आदर से लिए जाते हैं। भारतीय समाज पर "सत्यम शिवम् सुंदरम" से देखने वाले मनीषियों में रविंद्र शर्मा (गुरुजी) भी है जिनसे सामाजिक कार्यकर्ताओं ने भारतीय समाज के बारे में अपनी दृष्टि और जानकारी में सुधार किया। कुछ लोग दूर से बड़े और नजदीक आने पर छोटे दिखते हैं। रविंद्र शर्मा जी इसके विपरीत दूर से देखने पर अति सामान्य और नजदीक से ज्ञान, अनुभव का भंडार दिखते हैं। भारतीय समाज के बारे में जानकारी रविंद्र शर्मा जी के साथ बिना सत्संग किये मुझे हमेशा अधूरी लगती रही। उनके असमय चले जाने से एक अपूर्णिय क्षति हुई है, मगर विधना के आगे किसकी चली है। अब भी उनके ज्ञान का संकलन, संपादन, संप्रेषण हो यह युग की आवश्यकता हैं।

-- **K. N. Govindacharya (Facebook) (April 29, 2018)**

I met him long back, when I was starting out on my searches. 1995. A brief meeting, but the fragrance has stayed on. I have been meaning to go the Kala Ashram. Soon. A repositary of the wisdom on India. Guruji - Ravindra Sharmaji (via Sunny Narang) If there is one man in India , whose understanding of Sanatan Dharma , the Samskaras , the knowledge of living artisan and production traditions of tribal and rural jatis is second to none , it is Guruji - Ravindra Sharmaji. From a Punjabi family which after 1947 shifted to Adilabad in Telangana , he drowned himself among the complex community systems of Adilabad , from pottery to metal-casting , from local astrological to ritual traditions. Guruji is a living repository of how traditional India , really worked. I have met him a couple of times since 1992. Kala Ashram was founded in 1979 by 'Guruji' as a melting pot of culture, heritage, India's rural social-economics, art, science and anything that is associated with India and the way of life that was naturally led by people here. The Kala Ashram has been founded on the four principles or four pillars of Purushartha , that is Dharma, Artha, Kama and Moksha (Principles of Life, Economics, Aesthetics and Liberation). Here research is being continuously being done to understand and implement the way of life led by people in India vis-a-vis economics, philosophy, culture, heritage and science. The Indian village was a self reliant unit where every individual was living prosperously. The effort here is to understand how the people in the villages used to lead a life of self reliance and honour. The secret according to Shri Ravindra Sharma lies in the 49 Hindu Samskaras (Sacraments). These unique processes which were part of life played a very key role in the way of life. He was given the Ugadi Puraskaram last year by Telangana Government for his lifelong efforts by Chief Minister K. Chandrashekhar Rao . Guruji was given the award for his efforts in the establishment of Kala Ashram, which now serves as a hub of knowledge associated with rural life obtained in the past. People from different trades and calling come to the ashram from all parts of the country to learn about rural technologies among other things.

-- Aparna Krishnan (Facebook) (April, 2018)

जन्मदिन मनाने की कोई उम्र तो नहीं रही, फिर भी मित्रों की शुभकामनाओं और बड़ों के आशीर्वाद से खुशी मिलती ही है। परंतु इस बार सबकुछ होने के बाद भी मन प्रसन्न नहीं हो पा रहा है। कल ही खबर मिली कि रवींद्र गुरुजी नहीं रहे। उनके चले जाने का दुख सभी खुशियों पर भारी है। मन बहुत उदास है। मैं जानता हूँ, यहाँ बहुत से लोग जानते भी नहीं होंगे कि रवींद्र गुरुजी कौन हैं। यह इस देश का दुर्भाग्य ही है कि हमारे युवा फिल्मी सितारों और क्रिकेट खिलाड़ियों को तो पहचानते हैं, परंतु उन्हें देश की परंपरा के संरक्षक महापुरूषों के बारे में कतई कोई जानकारी नहीं होती। नहीं, इसमें उनका बहुत अधिक दोष नहीं है। हमारे देश की व्यवस्थाएं केवल चकाचौंध के

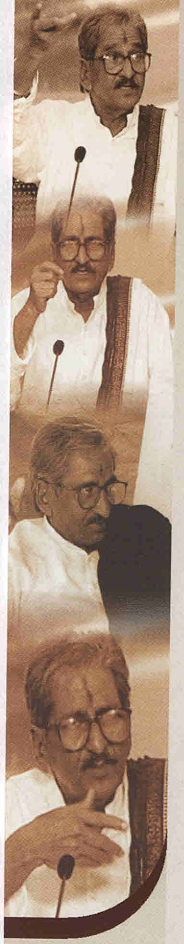

पीछे चलती हैं। तपस्वियों और मनीषियों को आदर्श मानने और उनके पीछे चलने की हमारी परंपरा कहीं विलुप्त हो गई है। और इसलिए हम रवींद्र गुरुजी को नहीं जानते। उन्हें कोई विदेशी पुरस्कृत भी तो नहीं कर गया न? यदि कर गया होता, तो भी शायद हम उन्हें जान जाते। परंतु इस देश की परंपरा और सच्चे इतिहास को सुरक्षित रखने का प्रयास करने वाले एक महान योद्धा को कोई विदेशी पुरस्कृत क्यों करेगा भला? जब हम ही उसे उसका वास्तविक स्थान नहीं दे पा रहे तो दुनिया क्या और क्यों करेगी? रवींद्र गुरुजी की एक ही बात याद आ रही है। उन्होंने कहा था भारत एक ऐसी संस्कृति है जो बिना किसी कारण के समाप्त हो रही है। इसे विकास समाप्त कर रहा है। विकास, जी हाँ, वही विकास जिसकी इतनी दुहाई हमारे प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी चौबीसो घंटे देते रहते हैं और भारतीयता और हिंदुत्व के सारे झंडाबरदार उनके पीछे झंडा उठाए खड़े रहते हैं। यह विकास नहीं, विनाश है। भारतीयता का विनाश। और याद रखें, इस विनाश के बाद यह विकास भी कहीं नहीं बचेगा। नहीं, मुझे जन्मदिन की बधाई मत दीजिए। रवींद्र गुरुजी को श्रद्धांजलि दीजिए। उनको यूट्यूब पर सुनिये और गुनिये। सोचिए, वे क्या संजो रहे थे और हम उसमें क्या कर सकते हैं। रवींद्र गुरुजी को मेरी अश्रुपूरित श्रद्धांजलि।

— **Ravi Shankar (Facebook) (April 30, 2018)**

ओम शांति गुरुदेव नहीं रहे। परम पूज्य गुरुदेव रवीन्द्र शर्मा जी का जाना हमारे लिए सचमुच अपूरणीय क्षति है, आप भारतीय लोक संस्कृति के एनसाइक्लोपीडिया थे, मैं तीन दिन तक अदिलाबाद स्थित आश्रम में उनके साथ रहा वो मेरी नागपुर गोकथा में मेरा उत्साह बढ़ाने भी आए थे, वास्तविक विद्वान कितना विनम्र होता है इसकी सहज मूर्ती थे गुरुदेव। मुझे इस महान विभूति से बड़े भैया श्री Rupesh Pandey जी ने मुझे जोड़ा था। पदयात्रा के रूट में अदिलाबाद में गुरुदेव से आशीर्वाद लेने के विचार से अत्यंत उत्साहित था, अब बहुत ज्यादा दुःखी हूँ।

— **Faiz Khan (Facebook) (April 30, 2018)**

इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र
INDIRA GANDHI NATIONAL CENTRE FOR THE ARTS

bhaviprayojana@gmail.com

www.ignca.nic.in @IGNCA :@ignca_delhi : @igncakd